जिनदत्त चरित्र

आचार्य वसुनन्दी मुनि

प्रस्तुति : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति

संस्करण : प्रथम – 1500 प्रतियाँ, सन् 2004
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
I.S.B.N. No.: 81-872880-86
द्वितीय 1000 सन् 2015, जयपुर चातुर्मास

प.पू. श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज
के 53वें मुनि दीक्षा दिवस (25 जुलाई 2015)
के अवसर पर ज्ञानवर्द्धन हेतु प्रकाशित
ग्रंथांक-04

ग्रंथ	:	**जिनदत्त चरित्र**
ग्रंथकार	:	कविवर ब्रह्मराय
गद्य लेखक	:	पद्मशाह पोरवाड़
पावन आशीष	:	परम पूज्य राष्ट्रसंत श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज
सम्पादक	:	आचार्य वसुनन्दी मुनि
सहयोगी	:	मुनि श्री जिनानंद जी
प्रकाशक	:	निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला e-mail : nirgranthmala@rediffmail.com
पुण्यार्जक	:	श्री आई.के. जैन, नोएडा (उ.प्र.)
मूल्य	:	स्वाध्याय (सहयोग राशि 15/-)
ग्रंथ प्राप्ति स्थान	:	1. श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली, बौलखेड़ा, कामां (राज.) 2. श्री दिगम्बर जैन ऋषभदेव मंदिर, ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला-जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.) 3. आचार्य श्री वसुनंदी साहित्य सद, जय शांतिसागर निकेतन, मण्डोला, गाजियाबाद (उ.प्र.) 4. सरस्वती प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, चांदी की टकसाल, जयपुर
टाइप व मुद्रक	:	बसन्त कुमार जैन, सरस्वती प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स बैंक के नीचे, हवा महल बाजार, आमेर रोड, चांदी की टकसाल, जयपुर मो.: 8561023344, E-mail : jainbasant02@gmail.com

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग वं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी केचार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कलयाण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करे तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अबलम्बन भव्य जीवों को भय वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं –

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं।।द.पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दु:खों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी मात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, रोगी की प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमश: जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्ति प्राप्त कर सकते है। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते है अत: जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान

के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं –

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा।। (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है 'उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ' का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया हैं। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक हैं। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः।।43।।र.श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय–सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि–निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्याक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असंभव है) का खजाना हैं ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक हैं अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के कारणों एवं त्रिलोक संबंधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का

कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा तो करते ही हैं वे अपने जीवन के साथ भी तो खिलवाड़ करते ही हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अत: मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अत: यथाशक्ति नित्य विनय पूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुन: प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशत: एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अत: प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के संपादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों, तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं, वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही है। अत: गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

''अलमति विस्तरेण''

कश्चिदल्पज्ञ श्रमण:
जिन चरण चञ्चरीक
(16.11.2015)

आद्य वक्तव्य

– आचार्य वसुनन्दि मुनि

अनादि काल से प्रवाहित धर्मामृत की निर्मल भागीरथी अविच्छिन्न रूप से अनन्तों भव्य जीवों का कल्याण करती चली आ रही है यह निर्मल धर्म धारा अनन्त काल तक बहती रहेगी। जिस प्रकार पृथ्वी व आकाश, अग्नि व जल, जीव व पुद्गल आदि अनादि काल से हैं, अनन्त काल तक रहेंगे, उसी प्रकार पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि भी अनादि अनन्त हैं। इस हुण्डावसर्पिणी काल में भगवान ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकर महापुरुष सदैव बने रहते हैं। विश्व में स्थापित अन्य दर्शन व धर्म तो कल्पित एवं अस्थाई हैं, मिथ्यात्वादि का पोषण कर भव भ्रमण ही कराने वाले हैं। अन्य धर्म तो किसी न किसी व्यक्ति विशेष द्वारा स्थापित हैं, जैसे विष्णु से वैष्णव धर्म, शिव से शैव मत, ईशू से ईसाई धर्म, गौतम बुद्ध से बौद्ध धर्म, गुरूनानक से सिक्ख धर्म इत्यादि। किन्तु जिनधर्म या अर्हंत मत किसी व्यक्ति विशेष द्वारा स्थापित न होकर अनादि काल से होने वाले जिन या अर्हंतों से प्रवर्तित है। इसी सनातन जिन धर्म या अरहंत मत का अवलम्बन लेने वाले जिनदत्त स्वामी हुये, जिनके जीवन चरित्र का वर्णन करने वाला यह श्रेष्ठ ग्रंथ है, यह ग्रंथ भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग की प्रेरणा देने वाला, संसार, शरीर व भोगों के यथार्थ स्वरूप का दिग्दर्शन कराकर वैराग्य भाव को आत्मा में भरने वाला है, निज स्वरूप की प्राप्ति में सहकारी सोपानवत् धर्म के मर्म को उजागर करने वाला 'जिनदत्त चरित्र' प्रत्येक प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी के लिये यह अत्यन्त उपयोगी ग्रंथ है।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी ऐलक श्री विमुक्त सागर जी (मुनि जिनानंद जी) क्षु. श्री विशंक सागर जी के लिये सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद एवं अनुवादक पं. श्री श्रीमाल जी, पुण्यार्जक श्री आई. के. जैन (नोएडा), मुद्रक एवं कवर सज्जा करने वाले श्री बसंत जैन, सरस्वती प्रिन्टर्स जयपुर सपरिवार को धर्म वृद्धि आशीर्वाद।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ मंद बुद्धि, अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गइ हो सकल संयमी विज्ञजन उन्हें क्षमा करते हुये मुझे संकेत देने का कष्ट करें तथा स्वाध्याय प्रेमी सुधी पाठकगण भूल संशोधन कर गुणग्राही दृष्टि बनाकर श्रद्धा, भक्ति व विनय पूर्वक विशुद्ध भावों से समीचीन विधि पूर्वक स्वाध्याय करें।

'अलमति विस्तरेण'

कश्चिदल्पज्ञ श्रमण:

16-11-2015 जयपुर

ॐ

गुणभद्राचार्य प्रणीत

जिनदत्तचरित्र

(भाषा)

(मंगलाचरण और प्रस्तावना)

यह संसार नाना दु:खों का स्थान एक कारागार स्वरूप है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र नाम के आठ दुष्टपुरुष इसके अधिकारी हैं और इनका स्वभाव बड़ा ही क्रूर है इसलिये यों तो ये समस्त है इस कारागार में रहने वाले प्राणियों को दु:ख दिया करते और उनसे मनमाना कठिन से कठिन काम लिया करते हैं परन्तु उन सब में मोहनीय बड़ा ही क्रूर है। यदि उसे दुष्टों का सरपंच कहा जाये तो कोई भी अत्युक्ति न होगी क्योंकि जितने भी दु:ख व सुखाभास सुख इस संसाररूपी कारागार में रहने वालों को मिलते हैं वे सब इस ही की सहायता व आज्ञा से इसके साथियों द्वारा किये जाते हैं। वैसे तो इसमें रहने वाले समस्त प्राणियों को ही इसकी आज्ञा का पालन करना होता है और प्राय: करते ही हैं परन्तु जो कोई भी लाखों और करोड़ों में से एक कदाचित् दृढ़ता से, किसी के कहने सुनने से इसकी आज्ञा का पालन न करे तो उससे यह क्रुद्ध हो जाता है और नाना उपायों से उसे अपने वश में चलाने का प्रयत्न करता है। यद्यपि उसका यह प्रयत्न विफल नहीं जाता तो भी यदि कदाचित कभी व्यर्थ चला जाता है तो इसे बड़ा ही क्रोध आता है फिर ऐसा कड़ा प्रतिबंध उस कारागार का कर देता है कि लोगों को आपस में उसके विरुद्ध कहने सुनने का कभी अवसर ही नहीं प्राप्त होता। परन्तु इतना कड़ा प्रबंध रहने पर भी जो लोग इसके विरुद्ध हो जाने से कारागार से निकल चुके हैं और अपने सतत् सुखदायी नगर की ओर प्रस्थान करने की तैयारियाँ कर रहे हैं वे उस कारागार के कैदियों को उनके अनुभूत दु:ख सुना सुनाकर चेतावनी देते हैं और अपने सरीखा

दृढ़ प्रतिज्ञ बनने के लिये उपदेश देते हैं जिससे कि बहुत से कैदी तो उनकी उस आप बीती दु:खभरी कहानियों को और वहाँ से निकलने के मार्ग को सुनकर उन सरीखे हो जाने के लिये कटिबद्ध हो जाते है। बहुत से वहां से निकलने के इच्छुक होने पर भी डांट डपट से जैसे के तैसे ही चुपकी साध रह जाते हैं और बहुत से उस मोहनीय की गाढ़ भक्ति में आकर उनकी कुछ सुनते ही नहीं हैं। इस तरह संसाररूपी कारागार के प्रधान अध्यक्ष मोहनीय के विरुद्ध लड़नेवाले और युद्ध में जय प्राप्त कर उसके अत्याचारों को लोगों में प्रकट करने वाले लोग समय-समय पर हुआ करते हैं। उनमें से जो इस युग में हुंडावसर्पिणी काल में हुये हैं वे आदिनाथ आदि चौबीस हैं और जो इन चौबीसों के उपदेश से मोहनीय को परास्त करने वाले हैं वे असंख्य और अनंत हुये हैं। इसलिये जिन्होंने इस संसाररूपी कारागार में सर्वदा व्यथित होते हुये प्राणियों को उसके दु:खों से निवृत्त होने का सीधा सच्चा मार्ग बतलाया और जो स्वयं अनंत सुख के भाजन बन गये वे हम लोगों का कल्याण करें उनसे प्रार्थना है कि हम लोगों को भी दुष्ट मोहनीय से युद्ध कर उसे परास्त करने की शक्ति प्रदान करें।

देवी! सरस्वती! यदि तू न होती तो इस संसाररूपी कारागार में अवरुद्ध हुये दीन दुखियों प्राणियों का जिनेन्द्र भगवान कैसे उद्धार करते उन्हें किस तरह सुख का मार्ग बतला मोक्षनगर पहुँचाते और क्यों ही वे हमारे उपकृत उपकारी ही होते। जो कुछ भी उनके प्रति हमारी भक्ति व श्रद्धा है सब तेरे ही द्वारा करायी गई है। तू ही इसमें प्रधान कारण है। संसार के समस्त पदार्थों का ज्ञान तेरे ही कारण से होता है। इसलिये हे संसार के प्राणियों की एकमात्र रक्षित्री जगद्धात्री जिनेन्द्र भगवान के वदनरूपी कमलपर अतिशय शोभित होने वाली दिव्य-ध्वनिरूपी राजहंसी पूज्य माँ! तेरे लिये हमारा बार-बार नमस्कार है।

मुनियों के शिरताज, अहिंसा और पाँच महाव्रतों के निर्दोष पालक, सर्वसिद्ध गुरुदेव! आपके लिये भी हमारा भक्ति भरा नमस्कार है यदि आप जिनेन्द्र भगवान के उपदेशों से अपनी आत्मा को उन्नतकर मोहनीय के साथ युद्ध न करते और उसकी ही आज्ञा का पालन करते रहते तो ऐसा कभी भी अवसर प्राप्त न होता कि हम भी उस मोहनीय के विरुद्ध कुछ भी आँख उठाकर देख सकें यह बस आप ही का प्रसाद है कि मोहनीय कर्म द्वारा भेजे मिथ्यात्वरूपी सर्प से डसे गये भी इस संसार के भव्य जीव

आपके सद्धर्मोपदेशरूपी अमृत का पानकर जी रहे हैं–मूर्छित व मृत्यु को न प्राप्त कर अपने अभीष्ट (स्वस्वरूप) की सिद्धि कर रहे हैं अन्यथा अनंत सुखस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति इस संसार के जीवों को दुर्लभ ही नहीं असंभव भी हो जाती वे इसे कभी न प्राप्त कर सकते।

कवि लोग प्राय: अपने–अपने रचित ग्रंथों की आदि में दुर्जनों की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा किया करते हैं एवं उनसे अपने काव्य के दोषों की मार्जना का विचार भी प्रगट करते हैं। परन्तु उनके उस लम्बे चौड़े प्रशंसा व निंदा के प्रस्ताव से सज्जन या दुर्जन कोई भी सहमत नहीं होते। वे लोग जो उनके मन में आती है अपने स्वभावानुसार दोषाच्छादन व दोषाद्घाटन गुणप्रकाशन व गुणाच्छादन आदि किये बिना नहीं रहते। इसलिये हम (गुणभद्रस्वामी) अपने इस ग्रंथ में व्यर्थ ही सज्जनप्रशंसा और दुर्जन निंदा का लोकानुगत गीत गाकर समय और शक्ति नष्ट नहीं करना चाहते। हमें केवल ये ही कहना है कि जिनदत्त सेठ की कथा मनुष्य के जीवन के कर्त्तव्यरूप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के प्रगट करने वाली है। जो लोग अपने जीवन को सदाचारी पवित्र परलोक में सुखप्रदान करने वाला बनाना चाहते हैं उनके लिये अतुलनीय यह सत्य दृष्टांत है इसलिये हमारी इच्छा हुई है कि ऐसे उत्तम पुरुष का जीवन लोगों को बतलाया जाये अत: उसे हम यहाँ लिखते हैं।

***

प्रथम सर्ग

इस मध्य लोक में असंख्यात द्वीप हैं उन सबके बीचोंबीच पृथ्वी जाति के जम्बू (जामुन) वृक्ष से शोभित यह जम्बुद्वीप नाम का द्वीप है। इसके मध्य में अनेक क्षेत्र हैं। उनमें भरतक्षेत्र का नाम उल्लेख के योग्य है। क्योंकि हमें उसी के एक देशवासी व्यक्ति का जीवन वृत्तांत यहाँ कहना है।

भरतक्षेत्र के दक्षिण भाग में एक अंग नाम का देश है। यह देश सांसारिक समस्त भोग उपभोगों की सामग्री के लिये सर्वत्र ख्यात है। इसके अधिवासी लोग कभी किसी प्रकार के भोग्य पदार्थ की लालसा से ग्रस्त नहीं होते। जब जिस प्रकार की आवश्यकता होती है उसे वहीं से पूरा कर लिया करते हैं। बाग–बगीचों की यहाँ कमी नहीं है। उनमें जा जाकर लोग मनमानी क्रीड़ा किया करते हैं। नदियों का यहाँ खूब ही जोर शोर है, कमलों के समूह उनमें खिले हुये दिखाई पडते हैं, भंवर कुएँ सरीखे गहरे हो होकर लोगों के मन में डर और कौतूहल पैदा करते हैं। जल उनका ऐसा स्वच्छ और मधुर है कि पीते ही बनता है उसके पान से कभी भी तृप्ति नहीं होती। स्त्रियाँ वहाँ की बहुत ही सुंदर हैं। उनके उस सौंदर्य का वर्णन करना असंभव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। उच्च घरानों की नारियों की तो बात ही क्या है? सामान्य शुद्र ग्वालों की कन्यायें जो धूप की उष्णता में, जाड़े की सरसराहट में सर्वदा कुम्हलाई रहती हैं उनके अप्रतिमरूप को देखकर ही पथिक लोगों को आश्चर्य सागर में डूब जाना पडता है और जो अपना शीघ्रता से मार्ग तय करना चाहिये था उसे भूलकर बहुत विलंब से तय कर पाते हैं। वहाँ खाद्य पदार्थों का बहुत ही आधिक्य है। आप जिधर ही चले जाइये उधर ही गाँवों में अनाज के ढेर के ढेर पावेंगे। कहीं आप जौ को देखेंगे तो कहीं गेहूँ को, और कहीं कोई अन्य ही अनाज दृष्टिगोचर होगा। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। केवल इसी से उसकी धान्य संपत्ति का ज्ञान हो सकता है कि सर्वदा खलिहानों में धान्यों की रखवाली के लिये समीप बैठे हुये किसानों को देखने से गाँवों की सीमा का यथेष्ट ज्ञान नहीं हो पाता (सर्वत्र मनुष्यों के झुण्ड के झुण्ड दीख पड़ने से 'यह गाँवों निकल गया' 'अब यह

गाँव आया है' अथवा 'ये इस गाँव के मनुष्य हैं' और 'ये इस गाँव के है' यह जरा भी नहीं मालूम पड़ता। उस जगह के वृक्षों की शोभा ही अपूर्व है। उसकी वह ऊँचाई और वह छाया की बहुलता चित्त पर एक दूसरे प्रकार का ही भाव अंकित कर देती है और उनकी सघन वीथियों में कोमल-कोमल मधुरवाणी बोलने वाले पक्षी बड़े ही सुहावने मालूम पड़ते हैं। लोक व्यवहार के लिये पृथ्वी का दूसरा नाम वसुमती (धनवाली) भी है। परन्तु जब हम वहाँ की सोने चाँदी पैदा करने वाली खानियों की तरफ दृष्टि डालते हैं तो उस जगह के लिये वह शब्द केवल व्यवहार के लिये ही नहीं किन्तु वास्तविक अर्थ को बतलाने के लिये भी उपयुक्त मालूम होता है-वहाँ की पृथ्वी केवल नाम से नहीं बल्कि अर्थ में भी वसुमती (धनसमृद्ध) है।

जिस समय का हम यह वर्णन कर रहे हैं उस समय जैन धर्म का यहाँ बड़ा ही प्रभाव था। जैन धर्म राष्ट्रधर्म कहकर उस समय परिचित होता था। लोग अपने दृष्कृत्यों के फलस्वरूप दु:खों से जब घबरा जाते थे और शान्ति सुख की तलाश करते थे तो इसी धर्म में आकर अपनी रक्षा करते थे। वहाँ जगह-जगह जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याणकों के बहुमूल्य मंदिर थे और हर समय नाना प्रकार के उनमें धार्मिक उत्सव हुआ करते थे जिन्हें देखने के लिये देव और दूर-दूर के लोग आया करते थे एवं अपने पापों का नाशकर पुण्य लाभ लिया करते थे। इस देश में प्राय: सर्वदा ही पुण्यात्मा और धर्मात्मा जीव उत्पन्न हुआ करते थे और यहाँ तक तीन जगत् को जीतने वाले काम के भी विजयी जिनेन्द्र भगवानों के गर्भ जन्म तप आदि पाँचों कल्याणक भी यहाँ हुये थे।

इस प्रकार अपने अधिवासियों को इहलोक और परलोक में सुख प्रदान करने वाली सामग्री के धारक इसी अंग (बिहार) देश में बसंतपुर नाम का एक नगर था और यही उस (अंग) देश की उस समय राजधानी थी। राजधानी होने के कारण इसका ऐश्वर्य और सौंदर्य उस समय स्वर्ग के ऐश्वर्य और सौन्दर्य से भी चढ़ बढ़कर लोगों को मालूम होता था। इसके चारों ओर बहुत ही गहरी एक खाई थी और उसको देखकर लोग कभी-कभी यह अनुमान लगाया करते थे कि इस नगर में रत्न अधिक हैं इसलिये उनको चुराने के लिये खाई का रूप धारण कर समुद्र पृथ्वी में घुसकर अपनी अभीष्ट सिद्धि करना चाहता है। इस खाई के बाद एक कोटा था और उसके बाद फिर नगर

निवासियों के महल मकानात थे। इसलिये उसमें रहने वालों को किसी प्रकार की कभी हानि न उठानी पड़ती थी। वे दृढ़ रीति से सुरक्षित होते थे। यहाँ धनिकों के महल और अट्टालिकायें बड़ी-बड़ी ऊंची थी। उनकी ऊँचाई से चन्द्रमंडल थोड़ी दूर रह जाता था और उसमें वहाँ की रमणीय रमणियों के मनोहर कपोलों की कांति को हरण कर अपने कांतिविहीन कलंक को मार्जन करने की इच्छा वाला वह मालूम होता था। पुरुषों के विषय में वह नगर किसी तरह दोषी नहीं कहा जा सकता। वहाँ के लोग एक दूसरे की संपत्ति को देख प्रसन्न होते थे। व्यापार आदि कार्यों में सत्य वचनों से ही काम किया करते थे और पात्र में अपनी विभूति का दान देकर संतोष के साथ इन्द्रियभोग भोगते थे। जिस प्रकार अन्यत्र इस देश में जगह-जगह धर्म के साधन भूत जिनमंदिर प्रतिष्ठित थे। उसी प्रकार इस नगर में भी नाना चित्र विचित्र कूटों शिखरों से अलंकृत विस्तीर्ण और उच्च उच्च अनेक जिनमंदिर विराजमान थे।

इस नगर का रक्षक क्षत्रियवंशी राजा चंद्रशेखर था। यह बड़ा ही सुंदर और सुडीलडौल का था। इसके प्रताप की महिमा दशों दिशाओं में उस समय विस्तृत हो गई थी। इसलिये इसके भय से लोग दूर गुहा झाड़ी और जंगलों में जा छिपते थे। यह जिस प्रकार अपने इन्द्रियसुखों को भोगता था उसी प्रकार बल्कि उससे भी कहीं अधिक धर्म के पालन में चित्त लगाता था। इसके मन में सर्वदा धर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है और इस बात का ध्यान बना रहता था और तद्नुसार पाप मार्ग से भीत हो धार्मिक क्रियाओं को निरतिचार पालने की पूर्ण कोशिश भी किया करता था। यह अपनी राजकीय विद्याओं का भी पूर्ण जानकार था। इसकी बुद्धि जिस प्रकार सूर्य अपने उदय से दिशाओं को प्रकाशित करता है उसी प्रकार समस्त विद्याओं को प्रकाशित करती थी। इसमें नम्रता भी खूब थी। इसे अपने चरणों में नमते हुये सामंतों को देखकर उतनी खुशी न होती थी जितनी की जगत् के एक हितु संत साधुओं के चरणों में नमते हुये अपने को देखकर आनंद होता था।

इस प्रकार राजाओं के योग्य नाना गुणों से भूषित राजा चंद्रशेखर के मदनसुंदरी नाम की पटरानी थी। यह समस्त संसार की स्त्रियों में अनुपम सुंदरी और बुद्धिमती थी। इसके उपमातीत सौंदर्य को देखकर कल्पनाचतुर कविगण तो यहाँ तक अनुमान लगाते थे कि देवांगनायें जो निमेषरहित नेत्रवाली हैं वे इसी के रूप को देखकर

आश्चर्य से आँखें फाड़े ही रह जाने के कारण है। अपने पति के समान यह रानी भी अप्रतिहतरूप से धर्म का पालन और इंद्रिय सुख का भोग करती थी। इसके हृदय में (वक्षस्थल में) जिस प्रकार निर्मल बहुमूल्य मोतियों का गुंफित हार शोभित होता था और उसका पहिनना वह उचित समझती थी उसी प्रकार इसके चित्त में मुक्त-स्वरूप में स्थित आत्माओं के ध्यान में निर्मल गुणों से विशिष्ट सम्यग्दर्शन भी शोभित होता था और उसका धारण करना भी वह उचित ही समझती थी।

इस प्रकार सधर्म के सेवक इन राजा रानियों की राजधानी में जीव देव नाम का एक सेठ रहता था। वह बड़ा ही जिनधर्म का भक्त और उसका गाढ़ श्रद्धानी था। उसके असंख्य धनराशि थी। उस समय उसके धन में बराबरी करने वाले बहुत ही कम दुनियाँ में लोग थे। धनाढ्यता के साथ-साथ इसमें एक और गुण यह था कि यह कंजूस न था। घर पर आये हुये श्रेष्ठ अतिथियों की तो न्यारी बात है इसके द्वार पर जो लोग दीन दुखिया दरिद्री आया करते थे उनके लिये भी इसका द्वार सर्वथा खुला रहता था। यह लोगों को मुंह मांगा दान दिया करता था। इसलिये इसकी बराबरी इस गुण में कोई भी उस नगर का धनाढ्य न कर सकता था। इसने जो कुछ भी धन उपार्जन किया था वह न्यायपूर्वक सत्य वचन बोलकर किया था। इसको मिथ्या बातों से बहुत ही चिढ़ थी। जो लोग मिथ्या वचन बोल बोलकर अनेक भावतावों से लोगों को फुसलाकर व्यापार करते थे उनको यह बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा करता था। सदाचार में इसकी सानी का कोई न था। अहिंसा आदि पाँचों अणुव्रतों का निरतीचार पालक होने से सज्जन लोग इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। पूर्व पुण्य से उपार्जित अपने द्रव्य को उसने अनेक जगह बहुमूल्य जिनमंदिरों के निर्माणों से सफल किया था। और वे उसके शरीरधारी यश सरीखे मालूम पड़ते थे। इसके माता पिता दोनों पक्षों से शुद्ध वैवाहिक विधि से परिणीत जीवंजसा नामकी पत्नी थी। यह बड़ी ही साध्वी और पतिव्रता स्त्री थी। ऐसी गुण की खान स्त्री हर एक के भाग्य में नहीं होती। इसने अपने अनेक सुगृहिणियों के उचित गुणों से सेठ जीवदेव के मन को मोहित कर लिया था। इसके विनयशील और गृहस्थी के उचित कार्यों में निपुण होने से सेठ जीवदेव सब प्रकार से सुखी थे। जिस प्रकार ये निर्विघ्नरीति से श्रेष्ठ धर्म का पालन करते थे, उसी प्रकार से धन का भी खूब ही उपार्जन किया करते थे। बहुत कहने से क्या? इस समय इन दोनों दंपित्तयों को सब प्रकार का सांसारिक सुख उपस्थित था। किसी की ऐहिक पदार्थ के लिये उन्हें कभी

याचना न करनी पड़ती थी।

एक दिन की बात है कि सेठानी जीवंजसा स्नान आदि से शुद्ध होकर नवीन वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो अपने दास-दासियों के साथ खूब सबेरे ही जिन मंदिर में भगवान जिनेन्द्र के दर्शन के लिये गई। वहाँ पहुंचकर पहिले तो उसने जिनदेव की तीन प्रदक्षिणा दी और उसके बाद स्तुति पूर्वक भगवान का बिम्बाभिषेक तथा पूजन किया। जब नित्य नैमित्तिक समस्त पूजनों से वह निवृत्त हो गई तो मुनियों की सभा में गई और धर्म सुनने की इच्छा से वहाँ नमस्कार पूर्वक बैठ गई। जिस समय यह जीवंजसा मुनियों की सभा में गई थी तो उस समय श्रेष्ठ धर्म के उपदेशक, भूत भविष्य वर्तमान काल के समस्त रूपी पदार्थों को जानने वाले अवधिज्ञान से भूषित मुनिवर गुण चंद्र पुरातन इतिहास की एक घटना भव्य श्रावकों को सुना रहे थे और उसमें प्रसंगवश पुत्रजन्म से स्त्रियों की प्रशंसा व पुत्र के न होने से उनकी निंदा का प्रभावशाली वर्णन कर रहे थे। मुनिराज के इस ओजस्वी व्याख्यान को श्रवण कर जीवंजसा के हृदय में गहरी चोट लगी। उसके अभी तक कोई पुत्र न हुआ था इसलिये वह मुनिवर का व्याख्यान और वह उसमें बतलाई गई पुत्र की आवश्यकता उसके हृदय में लोह की कील के समान पीड़ा देने लगी। वह बार-बार अपने इस अशुभ कर्म को धिक्कारने लगी और इस तरह सोचने लगी –

''हाय! मुझ अभागिनी के समान दु:खिया और धिक्कार पाने के योग्य संसार में कोई नहीं है। मैं बड़ी ही मंदभागिनी और पापिनी हूँ। न जाने पूर्वभव में मैंने ऐसा कौन सा पाप किया था जिसके कारण मुझे यह दु:ख उठाना पड़ा है। मेरा यह मन के हरण करने वाला यौवन किसी काम का नहीं है। ऐसे केवल नामधारी अशोक वृक्ष से मतलब ही क्या निकलता है जिस पर पुष्प तो लगते हैं परन्तु फल का नाम नहीं आता। उससे तो यही अच्छा है कि उसका इस दुनिया में नाम और निशान तक न हो। हाय! समुद्र के जल के समान खारी मेरे इस लावण्य गुण को भी शतश: धिक्कार है जिसके कारण इसमें पुत्ररूपी कमलों का आविर्भाव ही नहीं होता। अरे! मैं नाम मात्र की स्त्री हूँ। वास्तव में स्त्री शब्द से पुकारे जाने की मुझमें योग्यता ही नहीं है। शब्दशास्त्र के वेत्ता गर्भ से पुत्र की उत्पादिका नारी को स्त्री कहते हैं। परन्तु मैं अपनी तरफ जब दृष्टि डालती हूँ तो इस अर्थ की अपने में गंध भी नहीं पाती हूँ इसलिये

जिस प्रकार वर्षाकाल की लाल जंगल की कीड़ी को लोग इंद्रवधूटिका कहकर पुकारते हैं जिसका अर्थ इंद्र की सहचारिणी शची होता है परन्तु उस बिचारी में शची के योग्य एक भी ऐश्वर्य नहीं होता। लोगों ने केवल उसकी रूढ़ि संज्ञा कर ली है उसी प्रकार मुझे भी लोग लोक व्यवहार के लिये स्त्री–स्त्री कहते हैं। परन्तु वास्तव में उसकी मुझमें कोई भी योग्यता नहीं है। पुत्र की उत्पत्ति में स्त्री का जन्म सफल होता है। उसके होने से ही परिवार के लोग सास–ससुर आदि सब उसका सत्कार करते हैं और उसके अभाव में अन्य की तो बात ही क्या है उसका खास आधा अंग स्वरूप पति तक भी उससे रुष्ट हो जाता है वह भी उसकी कुछ बात नहीं पूछता। जिस प्रकार बिना व्याकरण के जाने किसी भी भाषा का विद्वान लोगों की दृष्टि में श्रेष्ठ विद्वान या आदरणीय नहीं समझा जाता उसी प्रकार कैसी भी सुंदर स्त्री बिना पुत्र की उत्पत्ति के श्रेष्ठ और आदरणीय नहीं समझी जाती। मैं एक पुत्र रूपी दीपक के न होने से अंधकार से आच्छात्र, उद्वेग के करने वाली रात्रि के समान मोह से मुग्ध, कुटुम्बी लोगों को उद्वेग के करने वाली हूँ। हाय! यदि मेरे अब तक कोई पुत्र हो जाता तो आज ऐसे दु:ख की भाजन होने का मुझे क्यों ही दुर्भाय प्राप्त होता।''

सेठानी जीवंजसा पुत्र के न होने से इस तरह अपने मन में नाना तरह के संकल्प विकल्प कर ही रही थी और अपने एक हाथ की हथेली पर कपोल रखे गर्म–गर्म श्वांस छोड़ रही थी कि उसके उस उदासीनता भरे मुख पर सभा के लोगों की एकाएक दृष्टि जा पड़ी। बस! सभासदों का देखना था कि जिस प्रकार वर्षाऋतु की मेघवर्षा के कारण तालाबों का बाँध टूट जाता है उसी प्रकार उसके हृदय सरोवर का बांध टूट गया उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली और पड़ापड़ आंसू पृथ्वी पर गिरने लगे। सेठानी की ऐसी शोकभरी हालत देख सभा के समस्त सभ्यों को दु:ख हुआ वे उसकी इस हालत का समस्त पूरा–पूरा वृतांत जानने के लिये अपनी–अपनी उत्सुकता दिखलाने लगे। अवधिज्ञानधारीगुणचंद्र मुनिवर ने जब उसकी और उसकी हालत में आश्चर्य सागर में डुबकी लगाने वाली सभा की वैसी सभा देखी तो वे अपने सत्यार्थ पदार्थों के जानने वाले ज्ञान की ओर दृष्टि लगाकर इस प्रकार कहने लगे–

''हे विशुद्ध हृदयवाली शीलधुरंधर जीवंजसे! धैर्य रख। जिस पुत्र के न होने से आज तुझे दु:ख का सामना करना पड़ा है वह पुत्र तेरे शीघ्र ही उत्पन्न होगा। संसार

में यों तो सब के ही पुत्र हुआ करते हैं और वे अपने-अपने-माता-पिताओं को प्यारे भी लगा करते हैं परन्तु तेरे ऐसा वैसा सामान्य पुत्र न होगा। समस्त विद्याओं का पारगामी वह अपनी गंभीरता से समुद्र की गंभीरता को भी नीचा दिखा सकेगा। सुंदरता में जगद्विजयी काम को भी वह परास्त कर देगा। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पदार्थों का बराबर सेवन करने वाला होगा। जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से आकाश को भूषित करता है, उसी प्रकार वह भी अपने गुणों के तेज से तेरे कुल को भूषित करेगा। तू अधिक मत घबरा। शोक करने की तुझे कोई आवश्यकता नही है। मैं निश्चय से कहता हूँ कि थोड़े दिनों में ही पूर्वोक्त गुणशाली पुत्र होगा और वह तेरे कुल को दीप्त करेगा।''

मुनि महाराज के मुख से अपने पुत्र की उत्पत्ति और उसके गुण वर्णन सुनकर सेठानी जीवंजसा के हर्ष का पारावार न रहा। जो थोड़ी देर पहिले उसका मुख वृक्ष पुत्र विरहरूपी ग्रीष्मऋतु के असह्य आताप से कुम्हलाकर फीका पड़ गया था वही अब पुत्रोत्पत्ति की आशारूप मेघवर्षा होने से हरा-भरा हो गया। उसके मुख मंडलपर पहिले से भी अधिक दीप्ति दमकने लगी। जो अश्रुप्रवाह उसके शोक के कारण बहा था अब वह ही हर्ष से जायमान हो बहने लगा। मुनि वचनों से जीवंजसा का वृत्तांत जानकर संपूर्ण सभा के हर्ष और विस्मय का कुछ भी ठिकाना न रहा। वह मुनि के उस परोक्ष वृत्तांत के जानने की शक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी। अब तक जिन मुनि को वह सामान्य समझती थी उन्हें ही अब बड़े महत्व से देखने लगी। सो ठीक ही है संसारी जीव अपनी सी शक्ति वाले ही सामान्य पुरुष सबको समझा करते हैं जब परीक्षा का अवसर आता है तब ही गुणों की कदर और हीनाधिकता की समझ होती है।

मुनि महाराज का जब समस्त उपदेश समाप्त हो चुका और सभा के लोग अपने-अपने गृहस्थी के कार्य करने के लिये घर चले गये तो सेठानी जीवंजसा भी अपने परिवार के साथ घर की तरफ रवाना हो गई और खुशी-खुशी निर्विघ्न रीति से अपने घर जा पहुँची। जीवंजसा की किंवदंती और उसके भावी पुत्र की उत्पत्ति का समाचार जब सेठ जीवदेव ने सुना तो उसे भी बड़ा हर्ष हुआ और उससे अपने मन के सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध हुये समझने लगा।

थोड़े दिनों के बाद जीवंजसा ने गर्भ धारण किया। वह जिस प्रकार प्रातःकाल अरुणोदय से पहिले गर्भस्थ सूर्य के प्रताप से पूर्व दिशा अधिक दीप्त होने लगती है

उसी प्रकार गर्भ में आये हुये पुण्यात्मा पुत्र के गुणों से अधिक दीप्त होने लगी। उदरस्थ बालक के होने से उसके शरीर में एक विलक्षण शोभा आ गई। मुखमंडल उसका पीला पड़ गया। कुच अग्रभाग में श्यामवर्ण हो गये। उदर की त्रिवली सर्वथा नष्ट हो गई। रह-रहकर क्षण-क्षण में जंभाईयों का आना प्रारंभ हो गया। घर के काम काज करने में अब उसका जी कम लगने लगा। जिन कार्यों को वह पहिले बड़ी फुर्ती से करती थी उनके करने से अब उसे आलस्य आने लगा और यहाँ तक कि वह अब धीरे-धीरे चलने में भी कष्ट समझने लगी।

इस प्रकार गर्भस्थ बालक की सूचना देने वाले जब समस्त चिह्न उसके प्रगट हो गये तो उसे उस पुत्र के गुणों की सूचना देने वाला जिनेन्द्र भगवान के पूजन करने का दोहला भी उत्पन्न हुआ और इस शुभ दोहला से उसके समस्त कुटुंबियों में भी आनंद की छटा छा गई।

दिन बीतते देरी नहीं लगती। धीरे-धीरे सप्ताह, पखवाड़े, महीना और युग तक बीत जाया करते हैं। सेठानी जीवंजसा के गर्भ में आये हुये बालक को भी धीरे-धीरे नौ महीने पूर्ण हो गये और उसके उत्पन्न होने का दिन आ गया। यथा समय सेठानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। घर के सब लोगों में आनंद की सीमा न रही। दासी-दास आदि सब ही खुशी के मारे फूले न समाये। बिजली के समान इसकी खबर सेठ जी के और समस्त नगरवासियों के कान तक पहुँच गई। सेठ जीवदेव ने अपने पुत्र जन्म की खुशी में दूर-दूर देश देशांतरों से आये हुय दीन-दुःखियों को और आशीर्वाद पढ़ने वाले ब्राह्मणों को इच्छा से भी अधिक दान दिया एवं मंगल गीत वादित्र आदि हर्षसूचक अनेक कार्य कराये। एक तो सेठ जीवदेव वैसे ही दान देने में कुशल थे परन्तु जब उन्हें ऐसा हर्षवर्धक शुभसंयोग प्राप्त हो गया तो अब उनके उस गुण की बात ही क्या थी? उन्होंने खूब ही उत्सव कराया और घर पर आया हुआ ऐसा कोई भी दीन याचक व्यक्ति को न छोड़ा जो अपने मनोरथ को पूर्ण करके हर्षित हो घर को वापिस न गया।

सेठजी जैनधर्म के भी पूर्ण भक्त थे। सर्वज्ञप्रणीत शासन के अनुसार प्रवृत्ति करना ही वे श्रेयस्कर और उत्तम समझते थे इसलिये। उन्होंने आगमानुसार अपने पुत्र के जातकर्म आदि संस्कार करा बड़े ठाठ-बाठ से जिनेन्द्र भगवान की पूजन करायी और अपने वृद्ध बंधु बांधवों के साथ उन्होंने उस बालक का नाम जिनदत्त रखा।

पुत्र जिनदत्त अपने समान रूपवाले लड़कों के साथ धीरे–धीरे बढ़ने लगा। जिस प्रकार द्वितीया के चन्द्रमा की दिनों दिन कलायें बढ़ती जाती हैं उसी प्रकार उसके अंग और गुण धीरे–धीरे बढ़ने लगे। जो पुत्र पहिले रोने के सिवा कुछ न कह सकता था वह अब पापा, मामा आदि शब्दों से इशारे करने लगा। जो खटोला आदि पर लेटने के सिवा कुछ नहीं कर सकता था अब वह घुटनों के बल पृथ्वी पर सरकने लगा। उसके बाद उसने अव्यक्त वाणी छोड़कर स्पष्ट वाणी बोलना प्रारम्भ कर दिया एवं पृथ्वी के बल सरकने की ज़गह बिना किसी की सहायता के स्वयं खड़ा हो चलने फिरने लगा।

चिरंजीव जिनदत्त ने जब शिशु अवस्था को छोड़ बाल्य अवस्था में पैर पसारा तो उसके पिता जीवदेव ने किसी बुद्धिमान श्रावके पास उसे सत्य शिक्षा से शिक्षित होने के लिये सुपुर्द कर दिया और वह उससे विनयावनत हो पढ़ने लगा।

विद्या शीघ्र आने में बुद्धि, विनय और परिश्रम चाहिये। यदि इन तीनों में कोई भी एक कारण कम हो तो वह शीघ्र नहीं आती। हमारे चरितनायक जिनदत्त में ये तीनों ही बातें उपस्थित थीं। वह बुद्धिका भी पैना था। विनयी भी खूब था और परिश्रम करने में भी सुनिपुण था इसलिये उसने बहुत ही थोड़े दिनों में प्रधान–प्रधान सर्वशास्त्र पढ़ डाले और उनमें पंडित हो गया। चतुर जिनदत्त को केवल इन मानसिक शक्ति और बढ़ाने वाले शास्त्रों को पढ़कर ही संतोष न हुआ। उसने प्रसिद्ध–प्रसिद्ध अस्त्रशास्त्रियों से उनकी शुश्रूषाकर धनुष छोड़ना, तलवार चलाना आदि शारीरिक शक्ति बढ़ाने वाली क्रियाएँ भी सीख लीं एवं वह उनमें भी पारंगत हो गया।

इस प्रकार जब शारीरिक और मानसिक शक्तिवर्द्धक ज्ञान उसने प्राप्त कर लिया तो अब उसका लक्ष्य अपने पिता प्रपिता आदि के कार्यों की ओर भी गया। उसने जिस प्रकार अपने पूर्वजों की ऐहिक जीविका निर्वाहार्थ क्रिया देखी उसके सीखने के लिये भी उसका चित्त लालायित हो गया। पूर्वापर विचार करके उसने अपने परंपरागत अर्थशास्त्र के ज्ञान संपादन को भी अपना प्रधान लक्ष्य समझा। इसलिये उसने उस विद्या का अध्ययन करके भी अपना वैश्यत्व यथार्थ कर डाला और अब वह अपने पिता आदि के समान प्रज्ञानुजीवी होने के सर्वथा योग्य हो गया।

जिनदत्त अब बालक नहीं रहे। जब से पढ़ना प्रारंभ किया तब से अब तक उनके मानसिक परिवर्तन के साथ शारीरिक संगठन में भी खासा परिवर्तन हो गया। वे अब

बालक कहलाने के योग्य नहीं रहे। युवा अवस्था के संपूर्ण लक्षण उनमें प्रकट हो गये। जिस प्रकार चंद्रमा की किरणों से आकाश शोभित होता है, श्रेष्ठ तपों के तपने से मुनीश्वर श्रेष्ठ समझे जाते हैं, न्याय मार्ग का अनुसरण करने से राजा प्रशंसनीय गिना जाता है, नवीन पुष्पों से वृक्ष शोभित होता है और राजहंसों से सरोवर अच्छा मालूम पड़ता है, उसी प्रकार यौवन लक्ष्मी के आने से वे शारीरिक संगठन के कारण अधिक तेजस्वी और शोभायमान दिखने लगे। मानसिक शक्ति के बढ़ने से मनुष्यों में प्रतिष्ठित हो गये। जिनेन्द्र भगवान के चरणों में अविचल भक्ति रखने लगे। अपने सहधर्मी सज्जन पुरुषों से अधिक प्रीति करने लगे और दया आदि नाना गुणों से भूषित होने के कारण समस्त संसार में प्रसिद्ध हो गये।

इस प्रकार श्रीमद् आचार्य गुणभद्रभदंतविरचित संस्कृत जिनदत्तचरित्र के भावानुवा में पहला सर्ग समाप्त हुआ।

***

द्वितीय सर्ग

हमारे चरित नायक जिनदत्त युवावस्था आने के कारण आजकल के युवकों के समान काम विलास से पीड़ित ना हो गये थे। यद्यपि उनका शरीर कामरंभ के सूचक यौवन के प्रभाव से दमक निकला था तो भी उनके मन पर उसका वैसा प्रभाव न पड़ पाया था। वे अपने उन दिनों के समय को कभी को काव्यरूपी अमृत के आस्वादन करने में बिताते थे, कभी विनोदक क्रीड़ाओं को करने में लगाते थे, कभी अपने गुरुओं के साथ वाचनिक शक्ति को बढ़ाने के लिये वाद करने में खर्च करते थे, कभी वितंडा, कभी जल्प, और कभी अन्य किसी प्रकार से शास्त्र चर्चा करने में लगाते थे। वे कभी घोड़े पर चढ़ने से अपने मन को प्रसन्न करते थे कभी रत्नों की परीक्षा कर अपना उस विषय का पांडित्य दिखलाते थे। कभी साधुओं की सेवाकर आशीर्वाद ग्रहण करते थे, कभी जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति कर अपना अस्तिक्य दिखलाते थे और कभी साधुओं की सेवाकर आशीर्वाद ग्रहण करते थे, कभी जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति पर अपना आस्तिक्य दिखलाते थे और कभी राजकार्य कर राजभक्त होने का तथा राजनीति निपुणता का अपना परिचय देते थे।

सेठ जीवदेव ने जब इनकी यह अवस्था देखी तो उन्हें बड़ी चिंता होने लगी। जैसे–तैसे तो एक पुत्र पाया था। और जब वह भी विरागी हो जीवन बीताते देखा तो उनसे न रहा गया। वे इस बात की कोशिश करने लगे कि चिरंजीव जिनदत्त किसी प्रकार विवाह करने पर राजी हो जाये। सेठजी ने इस अपनी आंतरंगिक कामना को जब ऐसे वैसे होते न देखा तो उसे पूरी करने के लिये उन्होंने अपने पुत्र के साथ सर्वदा रहने के लिये कई मित्र नियुक्त कर दिये और वे नाना तरह से उनके मन को कामुकता की ओर प्रवृत्त कराने का उद्योग करने लगे। कभी तो वे नियुक्त नवीन मित्र जिनदत्त को विलासियों के हरे भरे बगीचों में लिवा जाते और वहाँ उनके युगलों की परस्पर काम क्रीड़ा को दिखाते। कभी जल क्रीड़ा को करती हुई कामनियों के स्तन कुंकुमो की पीतमा से पीत वापियों का निदर्शन कराते। कभी पणवनिताओं के हावभावों से भरे

सुंदर रूप का अवलोकन कराते। कभी नाट्य शालाओं में ले जाते। कभी मनोहर कामोद्दीपक गीत सुनवाते। कभी कामरस की भरी गहरी–गहरी दिल्लगी करते। कभी नाना सुगंधियों से सुगंधित माल्य भूषण पहिनाते और जिनके रूप के देखने से बड़े–बड़े मनस्वी ब्रह्मचारियों के भी मन विचलित हो जाये ऐसी अनुपम स्त्रियों से प्रतिदिन इनका स्नान करवाते।

एक दिन की बात है कि अपने पूर्व मित्रों के साथ जिनदत्त दर्शन करने की इच्छा से कोटिकूट चैत्यालय गये थे कि वहाँ उसके दरवाजे की सीढ़ियों पर चढ़ते समय उनकी दृष्टि एक पुत्तलिका पर जा पड़ी। वह पुत्तलिका मंदिर के मंडप द्वार पर किसी प्रसिद्ध कारीगर द्वारा उकेरी गई थी। उसके प्रत्येक अंक का निर्माण देखने से शिल्पकला की पराकष्ठा मालूम पड़ती थी। उसको शरीर का हर एक अवयव स्पष्ट और मनोहारी था। हमारे चरितनायक की ज्योंहि दृष्टि इसके रूप पर पड़ी वे चकित हो गये। उनके क्षण भर पहिले जो पवित्र भाव थे और जो अभी तक किसी भी कारण से विकृत न हो पाये थे वे सहसा दूसरे ही प्रकार के हो गये।

मूर्ति की मनोहारिता ने उन पर पूरा प्रभाव जमा लिया। पहिले तो उनकी दृष्टि उस मूर्ति के समस्त रूप पर पड़ी और फिर उसके बाद क्रम–क्रम से शरीर के हर एक अंग पर पड़ने लगी। उनके नेत्र ज्योंही उस मूर्ति के चरणरूपी कमलों पर पड़े तो वे भ्रमर के समान उनकी ही गंध लेते रहे। नितंब भाग पर पड़े तो निधिभरित कलश की तरफ दरिद्र की भांति उसकी ही तरफ लालसा भरी दृष्टि से देखने लगे। लावण्य रूपी रस से परिपूर्ण नाभि कुंड पर पड़े तो मदन की ताप से पीड़ित के समान उसी में डुबकी लगाने लगे। रोमराजी पर पड़े तो महादेव से लिखी हुई प्रशस्ति समान उसे ही पढ़ते रह गये। मध्यस्थ कृश उदर पर पड़े तो त्रिवली रूपी रज्जुसे बंधे हुये के समान वहीं अटक गये। मनोहर स्तन रूपी दो पर्वतों के मध्य में पड़े तो उनके मध्वर्तीनी खाई के समान उसी में ही गिर कर रह गये। मनोहर हार के ऊपर पड़े तो उसका सहारा ले किसी प्रकार रेखात्रितय से सुंदर कंठ तक पहुँचने की कोशिश करने लगे। बाहुओं पर पड़े तो समस्त संसार में भ्रमण करने से श्रांत हुये काम के आश्रय स्थान के समान सुंदर उसी का आश्रय ले ठहर गये, मुखचंद्र पर पड़े तो काम की दाह में संतृप्त के समान उसी की शीतल किरणों की छाया में रहने की चेष्टा करने

लगे और केशरूपी पाश (जाल) पर पड़े तो वे वहीं उससे बद्ध हो निश्चेष्ट हो गये।

जिनदत्त ने जब इस प्रकार अपनी दृष्टि उसके केश पाश द्वारा काम से बद्ध पाया और अपने को उसके सर्वथा अधीन समझा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे –

''अहो! इस मूर्ति का रूप बड़ा ही अनुपम और उत्तम है इसके निर्माण करने में शिल्पी ने शिल्प विद्या का पूरा परिचय दिया है। पाषाण से निर्मित होने पर भी इसमें कांति, लावण्य, सद्रूप, सौभाग्य आदि की यथेष्ट आभा दिख पड़ती है। जिसका यह प्रतिबिंब है न जाने वह कितनी सुंदर होगी। एक बढ़िया रूप तो बिना किसी आधार के कोई कभी खींच नहीं सकता इसलिये अवश्य ही यह किसी न किसी की प्रतिलिप है। मैनें आज तक सैंकड़ों एक से एक उत्तम सुंदर स्त्रियाँ देखी हैं। परन्तु कभी भी पहिले इस प्रकार मेरा चित्त विकृत न हुआ था। आज इस मूर्ति के देखने मात्र से मेरे चित्त की विचित्र ही दशा हो गई है। ऐसा स्नेह बिना पूर्व भव के संयोग के कभी नहीं होता। यदि यह मूर्ति किसी आधार के आश्रय न हुई किसी की प्रतिमूर्ति न निकली तो मेरा जीवन मुझे संकटमय ही दीखता है। मेरे प्राण बचना कठिन है। परन्तु ऐसा होना असंभव है। अवश्य ही यह किसी जीती जागती स्त्री की प्रतिमूर्ति है काल्पनिक नहीं। क्योंकि किसी पदार्थ को देखकर जो प्रेम होता है वह पूर्व भव के संबंध से होता है। बिना उसके वह कभी उदित नहीं होता। अचेतन पदार्थ में जो रूपातिशय रहता है उससे केवल उसकी शोभा ही होती है किसी को किसी प्रकार का अनुराग विशेष नहीं होता और मुझे अनुराग विशेष हो रहा है।

पहिले तो सांसारिक भोग ही भोगना बुरा है और यदि वे भोगे ही जायें तो ऐसी ही आनंददायक अनुपम सुंदर स्त्री के साथ उन्हें भोगना चाहिए। यह मेरे मन को अतिशय अपने में अनुरक्त कर रही है और यह है भी वास्तव में श्रेष्ठ। इसलिये यदि इसके साथ ही मैंने संसार सुख न भोगे तो फिर पाले में म्लान किये गये आभारहित कमल के समान मेरा यह नव यौवन ही निरर्थक है। इसके साक्षात् होने मात्र से काम ने मेरे ऊपर अपना बाण ताना है इसलिये यह संसार में सुंदरियों की शिरोमणि है। अहा! अब मालूम हुआ। संसार में ऐसी–ऐसी ही अनेक मनोहारिणी रमणियाँ हैं। इसलिये जो लोग बढ़े–बढ़े तत्वों के जानने वाले भी हैं वे भी इनके रूप में फंसकर संसार से विरक्त नहीं होने पाते। अरे! रूद्र आदिक अनेक तेजस्वी पुरुष भी इनके

कटाक्ष बाणों से भिद गये और आसक्त हो इनमें ही जब रमण करने लगे तो मुझ सरीखे क्षुद्र पुरुष की तो बात ही क्या है? यह मुझ सुंदरता रूपी जल की भरी बापी मालूम पड़ती है इसलिये मैं इसके समस्त सौंदर्य रूपी जल को क्या अपने नेत्ररूपी पात्रों से पी जाऊँ? क्या इसको अपने समस्त अंगों से स्पर्श कर डालूँ और क्या प्रविष्ट हो एकम एक हो जाऊँ?

हमारे चरितनायक इस प्रकार की उधेड़ बुन में लग अपना समय बिता ही रहे थे और स्तंभित हो अपने जिनदर्शन के उद्देश्य को भूल रहे थे कि इतने में इनके साथी मित्र मकरंद ने इनके मन का भाव ताड़ लिया। वह इनकी आकृति से पुत्तलिका का प्रभाव इनके ऊपर पड़ा देख मन ही मन अति प्रसन्न हुआ। चिरकाल के बाद अपने और सेठ जीवदेव के मनोरथ को सिद्ध हुआ देख इसके हर्ष का पारावार न रहा।

वह मुस्कराकर अपने मित्र जिनदत्त से बोला –

''मित्र! क्या इस अचेतन पुत्तलिका ने आपका मन हरण कर लिया है? जो आप इस तरह निर्मनस्क हो खड़े हैं। क्या आप अपने यहाँ आने के उद्देश्यों को सर्वथा भूल गये?''

साथी मकरंद के इस ताना भरे वाक्य से लज्जित हो और ''जैसा आप कहें'' ऐसा वचन कहकर जिनदत्त अपने हाथ में उसका हाथ पकड़कर मंदिर के भीतर प्रविष्ट हो गये और जिनबिंब के दर्शनकर कुछ काल के लिये अपने मनोहारी लक्ष्य को भूल गये। मंदिर में जाकर जिनदत्त ने भगवान की तीन प्रदक्षिणा दी, उनके शांतस्वरूप का अनुभव किया और अनेक स्रोतों से उनकी स्तुति की।

धार्मिक कृत्य समाप्त कर जिनदत्त ज्यों ही मंदिर से बाहर हुए की उनका मन फिर वैसा का वैसा ही हो गया। भगवान की शांत मूर्ति को देखकर जो भाव शांत हुए थे फिर उस प्रतिमूर्ति के स्मरण से विकृत हो गये और जिस प्रकार मंत्र से आकृष्ट पुरुष बिना अपनी इच्छा के जहाँ ले जाओ वहाँ चला जाता है, उसी प्रकार ये भी अपनी इच्छा के न होते हुये घर की तरफ रवाना हो गये।

घर पहुँचकर हमारे युवा जिनदत्त की विलक्षण सी हालत हो गई। इन्हीं एक साथ कामज्वर ने अपने तीव्र आघात से घायल कर दिया। कामज्वर के असह्य आताप से

इतना घबड़ा गये कि महान्–महान् अगणित पुष्पों की शैय्या पर लेटकर भी ये शांतिलाभ न कर सके। उस अपने लक्ष्य के विरह में इनका खाना–पीना सब कुछ छूट गया। रात दिन सिवा उस लक्ष्य के स्मरण के ये कुछ भी विनोदादिक न करने लगे। कामज्वर की शांत्यर्थ इनके शरीर पर जो चंदन का लेप किया, जो कपूर घिसकर लगाया गया और जो कुछ भी पद्मनाल खसखस आदि शीतल पदार्थों की मालिश की गई उस सबने इनकी कामाग्नि पर घी का काम किया। घटने के बदले उन उपचारों से उसने और भी तीव्र वेग धारण किया। 'हाय! प्रिय पदार्थों। के वियोग होने से तो यही अच्छा है कि इस पर्याय का अंत ही हो जाये। जिससे इसके ये समस्त दु:ख न सहने पड़े। अरे काम! जिसकी केवल प्रतिमूर्ति ही देखकर मेरा मन इतना मुग्ध हो गया, जिसने अपने साक्षात् दर्शन न देकर अपनी तस्वीर दिखाकर ही मेरा हरण कर लिया उसको तुम क्यों नहीं वाणों की वर्षा से जर्जरित करते? मेरे मन को चुराने से वह अपराधिनी है उसको तुम्हें दंड देना चाहिये। निरपराधी मुझ पर अपनी वाणवर्षाकर दंड देना तुम्हारा सरासर अन्याय है।' इत्यादि असंबद्ध वचन कहकर उन्होंने उस एक स्वरूप ही तीनों जगत् को समझा। सर्वत्र उन्हें वह अपनी मनोहारिनी छवि ही छवि दीखने लगी। कामज्वर की तीव्र उष्ण स्वासों से उनके ओष्ठ म्लान हो सूख गये। इसलिये मन बहलाने के लिये गाने की इच्छा होने पर भी वे गा न सके। और उनकी इस इच्छा को देख जो कोई मधुर स्वर में गाने लगा उसके उस स्वर को उन्होंने काम के धनुष के टंकार के समान भयंकर कर्ण पीड़ा करने वाला समझा। उनकी उत्तरोत्तर इसक कामज्वर से भयंकर ही दशा हो गई। वे अपनी दोनों बाहुओं को पसार कर उसके आलिंगन की इच्छा से कभी पृथ्वी पर लेटने लगे। कभी आकाश में हाथ बढ़ाने लगे और कभी दिशा विदिशाओं में उठ–उठकर भागने लगे। इस प्रकार उनका संपूर्ण शरीर पसीने की बूंदों से तरबतर हो गया और मूर्च्छा ने उन्हें आ घेरा।

सन्निपात ज्वर ने समान कामज्वर से होने वाली जब सब चेष्टायें जिनदत्त की उनके मित्रों और उपचारकों को न दिखीं तो उनके छक्के छूट गये। वे घबराकर सेठ जीवदेव के पास पहुँचे और उनसे समस्त वृतांत सुनाकर शीघ्र ही प्रतिक्रिया की प्रार्थना करने लगे।

पुत्र की उपर्युक्त दशा का वर्णन सुन सेठजी मन में बहुत ही खुश हुए, मारे

हर्ष के उनके शरीर में रोमांच खड़े हो आये। वे 'अहा! संसार में स्त्रियों से बलवान कोई भी पदार्थ नहीं है। जिस कार्य को कोई भी पदार्थ सिद्ध नहीं कर सकता उसे वे सहज में ही कर डालती है। देखो! जिन लोगों के हृदय पटल को तीक्ष्ण से भी तीक्ष्ण वज्रसूचियाँ नहीं भेद सकतीं उनके ही उस कठिन वक्षस्थल को ये अपने कटाक्षों द्वारा बात की बात में घायल कर देती हैं। मेरा पुत्र इतना बड़ा पंडित और ज्ञानी है। परंतु उसे भी उन्होंने अपने तीर का निशाना बना डाला। यह मेरे लिये बड़े ही सौभाग्य की बात है। अब मुझे 'मेरी आगे कुलपरंपरा कैसे चलेगी' इस बात की कोई चिन्ता नहीं रही' इत्यादि आगामी शुभसूचक भावनाओं का ध्यान कर कुछ-कुछ मुस्कुराने लगे और पुत्र की दशा के सूचक मित्रयों को तांबूल भूषण आदि से यथायोग्य सत्कार कर पुत्र की वास्तविक अवस्था को जानने के लिये चल दिये।

पुत्र के पास पहुँचकर सेठजी ने जब उसकी वैसी अवस्था देखी तो वे गहरे विचार सागर में डूब गये। पहिले तो वे यह विचार कर कि 'पुत्र की इस समय कामज्वर से अवस्था तो बड़ी ही भयानक है और उसके मनोरथ की सिद्धि फिलहाल बहुत ही दु:साध्य मालूम पड़ती है। न जाने भाग्य में क्या होना वदा है? इसके अभीष्ट की सिद्धि होगी या नहीं। कुछ देर तक चुप रहे परंतु फिर अपने इस मन के भाव को मन में छिपाकर उसे ढांढ़स देने के लिये बोले -

''चिरंजीव प्यारे बेटे! तू खेद छोड, तू महा बुद्धिमान है, तेरे लिये अधिक कहना व्यर्थ है। तून जो खाना, पीना स्नान आदि करना छोड रखा है उसे फिर तू निश्चिंत हो कर! तेरे समस्त अभीष्टों को मैं अवश्य ही शीघ्र पूरा करूँगा। जिस कन्या को देखकर मन मुग्ध हो गया है वह चाहे राजा की लड़की हो, चाहे विद्याधर की कन्या हो और चाहे अन्य किसी पुरुष की ही हो अवश्य ही उसका तेरे साथ संयोग करा दूँगा। तू यह न समझ मैं तेरे लिये कुछ यत्न न करूँगा। नहीं! अपने समस्त कार्य छोड़कर भरसक ऐसा दृढ़ प्रयत्न करूँगा जिससे अवश्य ही तेरा उसके साथ विवाह हो जाएगा।''

उपर्युक्त साहस भरे वचनों से पुत्र को कुछ संतुष्ट कर सेठ जीवदेव अपने पुत्र की प्यारी मनोहारिणी मूर्ति को देखने के लिये कोटिकूट चैत्यालय की तरफ गये और वहां उसे देखकर अपना सिर हिलाते हुए कहने लगे -

''गहा! संसार की समस्त नारियों के रूप और लावण्य को अपने रूप और

लावण्य के प्रभाव से जीतने वाली यह मूर्ति धन्य है। अवश्य ही यह किसी न किसी की प्रतिमूर्ति है। बिना किसी कन्या के रुप देखे ऐसी मूर्ति का बनाना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव है। मेरे पुत्र का जो इसके रूप देखने से मन मुग्ध हो गया सो ठीक ही है। ऐसे रूप को देखकर मन का मुग्ध न होना ही आश्चर्यकारक है। जो ऐसे अप्रतिम रूप को देखकर भी मुग्ध नहीं होते वे वास्तव में या तो नीरस आत्मा हैं या फिर अचेतन पत्थर के ही समान है।''

सेठजी ने कुछ देर तक इस तरह का विचार कर जिस कारीगर ने उस मूर्ति को अंकित किया था उसे ढूंढकर बुलाया और उससे पूछा कि ''महाभाग! यह किस की तो मूर्ति है? कहां की यह रहने वाली है? और यह कैसी है?'' उत्तर में शिल्पी बोला –

''सेठ जी! चंपानगरी में एक अतिश्रेष्ठ विमल सेठ रहते हैं। उनकी यह सुन्दर सुता है। एक दिन मैंने इसे अपनी समवयस्क सहेलियों के साथ गेंद खेलते एक जगह देखा था। इसका रूप बड़ा ही मनोहर है। समस्त शरीर के अवयव सुकोमल हैं। उस समय यह अपने केशपाश की चोटी में चारों तरफ पुष्प लगाये थी। उनकी सुगन्धि से गुंजारते हुये भ्रमर इसके सिर पर भ्रमणकर अपूर्व ही शोभा बढ़ा रहे थे। खेल में परिश्रम पड़ने के कारण इसके कपोल भाग पर पसीना की सूक्ष्म–सूक्ष्म बिदुएँ झलक रही थीं। यह अपने उडते हुये वस्त्रों को और लटकते हुये हार को बांधकर मंडली में लक्ष्य बांधकर खेल रही थी और अतिशय रमणीय मालूम पड़ती थी। ज्योंहि मैंने इसको देखा तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और इसकी सुंदरता पर प्रसन्न हो मैंने वहाँ से आकर यह मूर्ति यहाँ उकेर दी। यद्यपि मैंने उसी कन्या को मन में रखकर यह मूर्ति बनाई है तो भी मुझे विश्वास है कि पूरी तरह से वैसी नहीं आई। यह केवल उसका सौंवा हिस्सा हैं।''

कारीगर के उपर्युक्त वचन सुनकर सेठजी प्रसन्न हुये। उन्होंने उसे खूब पारितोषिक दिया और जिनदत्त की प्रतिमूर्ति किसी पट पर उससे चित्रित करने को कहा। जब मूर्ति पटपर अंकित हो गई तो सेठजी ने संदेश कुशल श्रेष्ठ पुरुष शीघ्र ही बुलवाये और उन्हें चंपापुरी विमल सेठ के यहाँ जाने को कह रवाना कर दिया।

संदेशवाहक लोग यथा समय चंपापुरी पहुँचे और विमल सेठ के यहाँ जाकर

जिनदत्त का चित्रपठ तथा सेठजी का पत्र दिखाकर बोले –

"श्रीमान्! हमारे सेठ साहब ने आपकी सेवा में यह अपने पुत्र का चित्र और यह उसके साथ लिखित संदेश भेजा है। इसका आप जैसा उचित समझें वैसा उत्तर देकर हमें कृतार्थ करें।"

सेठ विमलचंद्र गंभीर और विवेकी पुरुष थे। उन्होंने ज्योंहि जिनदत्त का फोटो और सेठ जीवदेव का संदेश भरा पत्र देखा वे मन में बड़े ही खुश हुये। उन्होंने अपने कर्त्तव्य को घर बैठे और शीघ्र ही सफल होते देख आगत पुरुषों का खूब ही आदर सत्कार किया। सेठजी के पास कार्यवश आई हुई पुत्री विमला ने जब उस चित्र को देखा तो उसका चित्त भी अचानक ही काम के बाणों से घायल होने लगा। चित्र के देखने मात्र से उसके मन की विलक्षण दशा हो गई। उसके मन में उस चित्र का रूप मानो संक्रांत ही हो गया। इस रूप से ही वह निश्चेष्ट खड़ी हो गई। उस समय उसकी एक सखी बसंतलेखा भी वहाँ उपस्थित थी। उसने ज्योंहि उस चित्र को देखना चाहा तो उसने उसे वह नहीं देखने दिया और स्वयं एकांत में टकटकी लगाकर देखने लगी तथा मन ही मन मुस्कराने लगी। विमला के इस बर्ताव से सेठ विमलचंद्र ने उसके मन का भाव ताड़ लिया। वे अपनी सम्मति में पुत्री की भी सम्मति समझकर अपने बड़े लोगों से इस विषय में सम्मति पूछने लगे। जब कन्या की वर में और वर की कन्या में उन लोगों ने आसक्ति देखी तो उन्होंने भी इस कार्य को श्रेष्ठ समझा और अपनी सम्मति प्रकट कर हर्ष सूचित किया। इस प्रकार सेठ विमलचंद्र ने सबकी सम्मति और आज्ञा पाकर अपनी कन्या का जिनदत्त के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया और पत्र में उक्त बात को लिखकर आये हुये पुरुषों को पारितोषिक दे विदा कर दिया।

सेठ विमलचंद्र का पत्र पाकर जिनदत्त के पिता जीवदेव को भी बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने अपने मन के अनुसार अपने पुत्र की भावी वधु पाकर शीघ्र ही जिनदत्त को विवाहोचित समग्र सामग्री सहित चंपापुरी भेज दिया। पिता की आज्ञानुसार अपने मनोहरी लक्ष्य को प्राप्त करने की अभिलाषा से पहुँचकर वे चंपानगरी के बाहिर उद्यान में ठहर गये और सेठ विमलचंद्र को अपने आगमन की सूचना दे निश्चिंत हो गये।'

सेठ विमलचंद्र ने जब जिनदत्त के आगमन का समाचार सुना और अपनी पुत्री का विवाह मंगल निकट समझा तो उनके हर्ष का पारावार न रहा। उन्होंने शीघ्र ही

अपने भावी जमाता का यथोचित सत्कार किया। उनको स्नान आदि विधि कराने के लिये अनेक मनुष्य नियुक्त कर दिये। सैकड़ों घर और बाहिर की स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं, नृत्य करने लगीं और नाना तरह से अपने हाव–भाव दिखाकर उत्सव मनाने लगीं। तत, घन सुषिर आदि चारों प्रकार के बाजे बजने लगे और उनके शब्दों को सुनकर नगर की स्त्रियाँ अपना–अपना कामकाज छोड़कर सड़क के किनारों के मकानों के झरोखों में आकर एकत्र होने लगीं। जब योग्य समय हो गया और नगर में प्रवेश करना उचित समझा तो जिनदत्त उस समययोग्य सवारी में सवार होकर अपने मित्रों के साथ–साथ उस नगर में प्रविष्ट हो गये और स्त्रियों द्वारा आकांक्षा पूर्वक देखे गये शीघ्र ही अपने श्वसुर के घर पर जा पहुँचे।

हमारे चरित नायक की जब समस्त विवाह के समय होने वाली क्रियाएँ समाप्त हो गई और पाणिग्रहण के लिये कन्या बुलाई गई तो उन्हें उस अपनी प्यारी के साक्षात् देखने का सौभग्य प्राप्त हुआ। ज्योंहि काम की ध्वजा के समान मनोहारिणी उस विमला को उन्होंने साक्षात् देखा त्योंहि प्रतिलिपि रूप में उसके देखने में जो मन में भाव उदित हुये थे उनका फिर पूर्व अवस्था से अधिक संचार हो गया। उस समय तो जिस तिस प्रकार कामुक भाव हृदय में समा भी गये थे परन्तु इस समय तो सर्वथा ही न समा सके। विमला के दर्शनुरूपी जल से सींचा गया कामदेव रूपी वृक्ष उनके मन रूपी पृथ्वी में सैंकड़ों शाखाओं और प्रतिशाखाओं से वृद्धिगतहोने के कारण उससे बाहर निकलने की कोशिश करने लगा। काम को लोग चित्तभू केवल चित्त से उत्पन्न होने वाला कहते हैं परन्तु उस समय वह (काम) उन (जिनदत्त) के समस्त अंगों से उत्पन्न हो रहा था इसलिये पूर्वोक्त वचन सर्वथा मिथ्या प्रतीत होने लगा। ज्यों–ज्यों सुंदरता देखने के लिये अपने समुत्सुक चक्षु उन्होंने उसके अंगों पर डाले त्यों–त्यों काम ने भी उन पर अपना बाण तानना शुरू किया। जब पुरोहित ने विमला का हाथ जिनदत्त के हाथ में ग्रहण कराया तो वह भी लज्जा से नम्रीभूत हो अपने पैर के अंगूठे से पृथ्वी को खोदने लगी। कभी तो वह लज्जा से भरे हुये, गाढ़ उत्कंठा वाले, अलस, समद, स्निग्ध स्वाभाविक विलास से शोभित अपने नेत्रों को जिनदत्त के मुख पर ले जाती और कभी भूमि की तरफ नीचे को दृष्टि गढ़ टकटकी लगा जाती जिससे कि उस समय पृथ्वी और जिनदत्त के मुख का मध्यभाग श्वेत और श्याम वर्णवाले अनेक नीलकमलों के दल से आकुलित सरीखा जान पड़ता था। जब वे दोनों उठकर अग्नि की प्रदक्षिणा देने लगे

तो विरह से उत्पन्न हुये और इस समय के संगम से दूर हुये बाहिर स्थित संताप को ही प्रदक्षिणा देते हुये सरीखे मालूम होने लगे। अग्नि में होमे गये लाजों के संयोग से जो शब्द हुआ उससे योग्य वर और कन्या के संगम की प्रशंसा करते हुये के समान अग्नि मालूम पड़ने लगी। धुँए की तीव्रता से जो उनके शरीर में पसीना आ गया वह उनके मन के भीतर नहीं समान के कारण बाहिर आया हुआ प्रेम रस रसीखा दीखने लगा। जब वे दोनों मौक्तिक माला से अलंकृत तोरण वाली वेदिका में आकर भद्रासन पर बैठ गये तब श्रेष्ठ क्षत्रियाणी नारियाँ उनके ऊपर जो अक्षत फेंकने लगीं वे उनके सौभाग्यरूपी लता के बिखरे हुये पुष्पों के समान सुंदर दिखने लगे।

इस प्रकार जब वैवाहिक समस्त विधियाँ समाप्त हो चुकीं और पाणिग्रहण भी हो चुका तो इन्हें गीत नृत्य आदि उत्सव को देखते-देखते ही संध्या हो गई। सूर्यदेव इनके शारीरिक वियोग को और अधिक न देख सकने के कारण ही मानो अस्ताचल की ओर अपना डेरा डंडा बांध किनारा कर गये। यह देख विचारी सरोजिनी को महान दु:ख हुआ वह अपने पति के इस बर्ताव से बहुत ही दु:खित हुई और उस दु:ख को अधिक होने से न संहार सकने के कारण ही उसने अपने कमल रूपी नेत्रों को बंद कर लिया। सूर्य के चले जाने और रात्रि के आने से हर्षित हो मृगनयनी कांतायें श्रृंगार से सुसज्जित होने लगीं और प्रिय तक अपने मन के अभिप्राय को पहुँचाने के लिये दूतियों से आलाप करने में व्याकुल हो गई। आकाशरूपी पृथ्वी पर जो उस समय लालिमा छा गई वह कालरूपी हस्ती से उखाड़े सूर्य की रक्तधारा के समान मालूम होने लगी। अपने से प्रकाशित जगत को अंधकार से आवृत होते देख जब इस प्रकार सूर्य छिप गये तो लोगों ने अपने नित्य कर्म करने के लिये बत्ती और तेल से संयुक्त अधंकार के नाशक दीपक जलाने शुरू कर दिये। नवीन वधु और वर को कौतुक से देखने के लिये ही मानो आई हुई नक्षत्र और तारारूपी भूषणों से भूषित रात्रि जब सर्वत्र व्याप्त हो गई तो अंधकार रूपी हस्ती से आक्रांत अपने राज्य स्थान जगत को देखकर किरण रूपी छटा से शोभित चंद्रमा रूपी सिंह शीघ्र ही आकाश रूपी अपनी राजधानी में आकर प्रकट हो गया। चंद्रमा की शीतल किरणरूपी चंदन धारा से उस समय कामदेव रूपी महाराज का अंगण लिप्त सरीख मालूम होने लगा। इस प्रकार जब समस्त दिशायें उसकी निर्मल किरणों से व्याप्त होने के कारण क्षीर समुद्र के दुग्ध से अभिषिक्त सरीखी, कपूर के रस से लिप्त सरीखीं और अमृत के पूर से मौत सरीखीं मालूम होने लगी तो कामदेव ने

अपना अमोघ बाण धनुष पर चढ़ा लोगों पर छोड़ना शुरू किया जिससे शीघ्र ही अभिसारिकायें अपने-अपने संकेतस्थल पर पहुँचने लगीं, कामी लोग अपनी-अपनी रूष्ट कांताओं के मानिर्नाशश्र में परिश्रम करने लगे। नवीन वधुएँ विचित्र रस से कदर्थित होने लगीं। वेश्यायें अपने चातुर्य से ठगकर निवासियों को भोग कराने लगीं। केतकी के पुष्प की प्रचंड गंध से भ्रमर मधुर-मधुर गुंजार करने लगे और विरहिनी स्त्रियों की मन स्थित अग्नि प्रजंड रूप से धड़कने लगी।

जब इस प्रकार समस्त लोक काम की आज्ञा के पालन करने में दत्तचित्र हो गया तो इन दोनों नवीन वर वधुओं की भी अधिक देर तक वियुक्त रखना इनके संबंधियों ने उचित न समझा इसलिये शीघ्र ही ये केलि घर में पहुँचाये गये और वहाँ जा कर मुनियों के मन के समान कोमल निर्मल सेज पर स्थित हो अपने चिरकालीन वियोग से संतृप्त हृदय को शीतल करने का उपाय करने लगे।

लज्जा से चंचल अतुल प्रेम के भार से मुग्ध गाढ़ उत्कंठा वाले, रतिरस के वश हुए। कौतुक से कंपित चित्तवाले इस नव युगल के मुख पर मुखरस आनंद से निद्रा लेते हुये जब समस्त रात्रि ही बीत गई तो पूर्व दिशा के कुंकुम भूषण के समान रात्रि रूपी अंगना के विस्मृत लोहित कमल के समान, काम रूपी महाराज के रक्त छत्र के समान, अंधकार नाशक चक्र के समान और आकाश रूपी स्त्री के मांगल्य कलश के समान मालूम होता हुआ सूर्य मंडल आकाश में स्पष्ट रीति से दृष्टिगोचर हो गया।

इस प्रकार श्रीमद् आचार्य गुणभद्रंतविरचित संस्कृत जिनदत्त के भावानुवाद में द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।।2।।

***

तृतीय सर्ग

अपनी प्यारी विमला के साथ नाना प्रकार की केली क्रीड़ायें करते-करते जब बहुत दिन बीत गये तो एक दिन जिनदत्त अवसर देखकर अपने ससुर से बोले-

''पूज्य! मुझे यहाँ रहते अधिक दिन बीत गये हैं मेरे माता-पिता मेरे आने की आशा करते होंगे इसलिये आपसे प्रार्थना है कि मुझे यहाँ से घर जाने की आज्ञा दे कृतार्थ करें।''

जमाता की उक्त प्रार्थना सुन सेठ विमलचन्द्र को यद्यपि बहुत दु:ख हुआ तो भी जिनदत्त का अपने घर जाना उचित समझ उन्होंने कहा -

''प्यारे पुत्र! यद्यपि तुम्हारा वियोग असह्य है। उससे मुझे ही नहीं किन्तु तुम्हारे अन्य संबंधियों को भी दु:ख होगा इसलिये तुम्हें यहाँ से जाने की आज्ञा देने को चित्त नहीं चाहता तो भी यहाँ अधिक रहने से तुम्हारे माता-पिता के दु:खी होने का डर है इसलिये तुम्हें रोकना भी अनुचित है।''

ससुर की आज्ञा पाकर जिनदत्त अति प्रसन्न हुये और नियत मिति पर अपने ससुर द्वारा दिये गये दासी-दास सवारी आदि परिकर से वेष्टित हो घर की तरफ चलने की तैयारियाँ करने लगे। जिनदत्त जिस समय रवाना हुये तो ग्राम के बाहर उद्यान तक इनके ससुर सासु आदि संबंधी लोग भी आये और वहाँ जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक पूजन कर जब धार्मिक शुभ कार्यो से निवृत्त हो गये और वहाँ से प्रयाण कराने का समय समीप आया तो विमला के पिता सेठ विमलचंद्र अपनी पुत्री के सिर में प्यार करके बोले -

''पुत्री विमला! आज तू पिता के घर से अपने पति के घर जा रही है। यहाँ जो कुछ भी तू क्रूरता, दुर्जनता और चपलता आदि दोष करती थी वे सब तेरे लड़कपन में संभाल लिये जाते थे परंतु तू वधु बनकर जा रही है। इसलिये इन्हें तू सर्वथा छोड़

देना। इनकी तरफ तू कभी अपना चित्त भी मत ले जाना। यदि शिक्षा के अनुसार न चल कर तुमने विपरीत किया तो प्यारी बेटी! तू अपने समस्त कुटुंबियों के लिये विषबेल के समान दु:खदायिनी गिनी जायेगी। तेरे से सुखी होने के बदले तेरे सास-ससुर तुझसे दु:ख पावेंगे और तुझे अपने घर का कंटक समझेंगे। इसलिये तू इस बात का अवश्य ध्यान रखना।

तेरे लिये इसके सिवा एक यह भी कर्त्तव्य है कि जिस प्रकार तेरा पति तुझे रखे उसी अवस्था में तू संतोष रखना। सर्वदा छाया के समान अपने पति की अनुगामिनी होना। जो कुछ तेरा पति कहे उसे तू अवश्य ही करना। पति के दु:ख और सुख में सुख मानना, अपने चित्त को कभी बुरी बातों की तरफ मत ले जाना। सर्वदा चित्त पतिभक्ति, जिनपूजन, गुरुसत्कार आदि श्रेष्ठ कार्यों में ही लगाते रहना और धार्मिक कर्त्तव्य को अपना प्रधान लक्ष्य समझना। ऐसा करने से तू अपने वंश की भूषण पताका के समान प्रशस्त गिनी जायेगी और समस्त कुटंबियों की प्रीति भजन हो सकेगी।''

जब इस प्रकार सेठ विमलचंद्र अपनी प्यारी पुत्री को शिक्षा दे चुके तो उसकी पत्नी भी विमला को छाती से चिपकाकर और आँखों में प्रेमाश्रु का पूर भर कर बोली –

''मेरी प्यारी पुत्री! तुझे मैंने छोटे से पाल पोसकर बड़ा किया है और अब तुझे तेरे ससुर के घर भेजे देती हूँ। आज से तेरा जीवन दूसरे ही ढंग का होगा। तू वहाँ जाकर अपने पति के सिवाय हर एक से हास-विलास मत करना। किसी से अधिक बात चीत का अपना लड़कपन प्रकट न करना। अन्य के साथ एक आसन पर मत बैठना। अधिक माला आभूषण आदि की तरफ अपना चित्त न लगाना और अन्य के साथ जहाँ कहीं गमनागमन भी मत करना।

जिस समय अपने पति का मन प्रफुल्लित देखना उसी समय मान करना और वह भी अधिक देर के लिये न कर अल्पकाल तक ही करना जिससे कि तेरे पति के मन में किसी प्रकार की क्लांति न पैदा हो।

हम लोगों के वियोग में तू अधिक दु:खित न होना और यहाँ आने की तरफ अधिक उत्कंठा न दिखलाना।

अपने ज्येठ, देवर, सासु-ससुर, दोरानी, जिठानी और ननद प्रभृति में सर्वदा

अपनी नम्रता दिखलाना। ऐसा कोई भी असंबद्ध हास्यादिक न करना जिससे कि वे रुष्ट हो जायें और उन्हें दु:ख प्राप्त हो।

तू अपनी सासु को माँ कहकर पुकारना, ससुर को तात कहना और प्राणनाथ (पति) को प्रियेश शब्द से संबोधन करना और देवर को सुत कहकर बोलना एवं उन्हें तू उसी प्रकार समझना।

प्यारी बेटी! तू किसी वस्तु के लिये अपनी लालसा प्रकट न करना। मैं यहाँ से सैकड़ों और हजारों बढ़िया से बढ़िया वस्तुएँ तेरे लिये भेज दिया करूँगी। तू उनसे ही अपना मन संतुष्ट रखना।''

जब इस प्रकार सेठ और सेठानी अपनी पुत्री को शिक्षा दे चुके तो जिनदत्त ने उन्हें प्रणाम किया और घर लौट जाने के लिये साग्रह प्रार्थना कर अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

जिनदत्त क्रम-क्रम से मार्ग में पड़ाव डालते हुये अपने जन्म स्थान बसंतपुर आ पहुँचे। इनके आगमन की सूचना पाकर इनके पिता सेठ जीवदेव इन्हें लेने के लिये गाँव के बाहर आये और बड़े ठाठ-बाट से रति सहित कामदेव के समान सुशोभित होने वाले इनको वधु सहित नगर में प्रवेश कराया।

'विवाह कर वधु सहित जिनदत्त आये हैं।' यह समाचार ज्योंहि नगर में फैला कि नगर की समस्त स्त्रियों में खलबली मच गई। वे जिनदत्त और उसकी वधु को देखने के लिये लालायित हो अपने अपने काम काज छोड़ मकानों की छतों पर चढ़ने लगीं। जो स्त्री उस समय भूषण पहन रही थी वह तो अपने भूषणों को यथास्थान न पहिन यों ही चल दी। जो काजल लगा रही थी वह उसे नेत्रों में न लगा अन्य स्थल पर ही लगाकर दोड़ पड़ी। जो बच्चे को दूध पिला रही थी वह उसे पूरा न पिला रोता ही छोड़ भाग चली। जो स्त्रियाँ कौतूहल से इस उत्सव को देख रही थीं उन्हें अपने तन बदन की भी सुध न थी। किसी का स्तन खुला था और उसे देखने वाले हास्यपूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। किसी का डोरा टूट जाने से गले का हार ही बिखर गया था और उसकी वह कुछ भी परवाह न कर रही थी कोई अपने नेत्र कटाक्षों से उसे विद्ध करने का उद्योग कर रही थी तो कोई उसके रूप वर आसक्त हो मन में काम संताप से संतृप्त हो रही थी।

कोई यदि उन पर वधुओं को धन्य-धन्य कर रही थी तो कोई उन्हें काम और रति के युग्म की उपमा दे रही थी। कोई यदि जिनदत्त की प्रशंसा करने में तत्पर थी कोई यह चिरंजीविनी हो विघ्नरहित सुख का इस पति के साथ बहुत दिनों तक भोग करे इत्यादि आशीर्वाद पढ़ अपना मन संतुष्ट कर रही थी। इस प्रकार स्त्रियों के समुदाय को सर्वप्रकार से आकुलित और वाचाल करते हुये वे वर वधु अपने घर आये और गोत्र की वृद्धा स्त्रियों द्वारा पूरे गये चौकपर थोड़ी देर बैठकर जिनेन्द्र की पूजा पूर्वक मांगल्य विधि को ग्रहण करते हुये सुख से रहने लगे।

हमारे चरितनायक इस प्रकार सर्वथा गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो गृहस्थ के योग्य क्रियाओं के करने में दत्तचित्त रहने लगे। जिस प्रकार इन्होंने अपने शैशव में विलक्षण और अद्भुत क्रीड़ायें कर कुटुंबियों को प्रसन्न किया था, जिस प्रकार पठनावस्था में शीघ्रता पूर्वक समस्त विद्याओं को उपार्जन कर संसार को चकित किया था उसी प्रकार युवावस्था में धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थो को अव्याहत रीति से पालते हुये इन्होंने लोक में अपना शुभ्र यश विस्तृत कर दिया। यह समय इनके पंचेन्द्रिय विषय भोगने का और उसके साथ यथायोग्य धर्म पालने का था। उसके अनुसार इन्होंने समस्त सुख भोगना शुरू कर दिया और सुख के वर्ष घड़ियों के समान निकल जाते हैं इसे कहावत के अनुसार वे दिन पर दिन निकलने लगे। जो याचक इनके द्वार पर आता उसे ये इच्छानुसार दान देते। जो महात्मा इनके घर आते उनका विनयावत् हो सत्कार करते और जो निर्बल पुरुष इनकी सहायता चाहता उसे सर्वप्रकार सहायता देते। ये समय विभाग पूर्वक अपनी नित्य क्रियायें करते। प्रातः काल जिनमंदिर में जाकर भगवान की पूजा करते, और शास्त्र पढ़ते। मध्याह्न में वहाँ से आकर संयोगिनी को दान देकर स्वयं भोजन करते और भोग सेवन के समय भोगों का सेवन करते।

इस प्रकार परस्पर अव्याघात रूप से तीनों पुरुषार्थो का सेवन करते हुये इनके सुख से दिन व्यतीत हो ही रहे थे कि एक दिन अचानक ही इनके सिर में पीड़ा होने लगी। इस पीड़ा से जब इनका किसी कार्य में मन न लगने लगा तो इनके मित्रों ने इनके विनोदार्थ अधीश पदाति, हस्ति और घोड़ों का परस्पर में युद्ध कराना शुरू किया। यह युद्ध स्पर्धा से किया गया था। इसमें हारने वाले को जीतने वाले से बाजी माननी पड़ती थी और कुछ धन आदि भी अर्पण करना पड़ता था। जब इस क्रीड़ा में हमारे चरितनायक

का चित्त लग गया और उससे उनकी कुछ प्रसन्नता देखी तो कुछ धनपलंटी धूर्तों ने जुआ खेलना प्रारंभ कर दिया और वे लोग ज्यों-ज्यों इनकी अभिरुचि देखते गये त्यों-त्यों अधिकाधिक खेलते गये।

बुरी बातों में मन बहुत जल्दी लग जाता है और उनके उपदेशक भी जगह-जगह मिल जाया करते हैं इसलिये जुआरियों का जुआ देखते-देखते इनका मन भी उसके खेलने में फँस गया। ये भी बाजी पर बाजी लगाने लगे। इनके धन की तो कुछ कमी थी नहीं जो हारते हुये दुःख होता और ऐसे खिलाड़ी नहीं थे जो जीतकर न हारते इसलिये धीरे-धीरे इन्होंने अपना समस्त धन स्वाहा करना शुरू कर दिया। सौ पचास सैकड़ों दो सैकड़ों या हजार रुपयोंकी तो क्या बात इन्होंने अपनी ग्यारह करोड़ मुद्रायें उसी जुए के खेलने में हारकर जुआरियों को दे डाली।

जब कुमार जिनदत्त की आज्ञा से नौकरों पर नौकर आना शुरू हुये और धन खर्च होना प्रारम्भ हुआ तो इनके पिता के खंजाचियों को यह बात सहन न हुई। उसे इस बात का पूरा पता लग गया कि इतना धन सिवाय किसी दुष्कर्म के अन्य कार्य में इतना जल्दी नहीं खर्च हो सकता इसलिये और अधिक धन देना उचित न समझा एवं जिनदत्त के आज्ञाकारियों को धन देने की स्पष्ट मनाई कर दी। जब पिता के खजाने से धन मिलना बंद हो गया और जुआ खेलने का शौक कुछ कम न हुआ तो जिनदत्त ने अपनी स्त्री के खजाने से धन माँगना शुरू कर दिया और उससे आये हुये भी सात करोड़ दीनार हार कर खो दिये।

स्त्री के खंजाची ने जब यह बात देखी और कुछ भीतरी हाल मालूम हुआ तो नौकरों को उसने भी धन देने की साफ मनाई कर दी। अब तो जिनदत्त के याचकों को गहरी चोट लगी। जब पिता के खंजाची ने मनाई कर दी थी तब तो उनकी स्त्री के खजाने के मिलना प्रारंभ हो गया था इसलिये कुछ दुःख न हुआ था। और जब स्त्री के खजाने से भी धन कोरा जवाब मिल गया तो अन्य धनागम की प्राप्ति का कारण न होने से उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। उन्होंने आकर अपने आज्ञापक जिनदत्त से कही और उन्होंने ज्योंहि यह समाचार सुना उनका मुख पाले से सताये गये कमल के समान मुरझा गया। थोड़ी देर पहिले जो द्युतक्रीड़ा से उनके मुख पर कुछ खुशी और हँसी की रेखायें झलक रही थीं वे सर्वथा बिला गई और उस पर चिंता का गहरा साम्राज्य छा गया।

विद्वता एक न एक दिन अपना अवश्य असर दिखाती है। विद्वान मनुष्य चाहे कैसे भी बुरे व्यसन में फँस जाये अवश्य ही किसी निमित्त के मिलने से सुधर जाता है। हमारे चरित्रनायक जो द्युतक्रीड़ारूपी व्यसन में फँस गये थे। जिसके कारण अपने पिता और स्त्री के अपरिमित धन को खो देने से उनके खंजाचियों द्वारा आज्ञाभंग पूर्वक अपमानित हुये थे, वे ही अब मानभंग होने के कारण सुधर गये। चिंता में व्यस्त होने के कारण उन्होंने द्यूत तो उस समय बंद कर दिया और इस प्रकार मन में विचारने लगे।

जो लोग अपनी भुजाओं से द्रव्य उपार्जन करते हैं, जिनको उसकी कृपा से सर्व प्रकार के सांसारिक सुख उपलब्ध हैं और जो किसी के मानभंग सूचक शब्दों से कभी प्रतिहत नहीं होते वे लोग संसार में धन्य हैं उनका ही जीवन प्रशंसा के योग्य है, उनसे भिन्न जो दूसरे लोगों के द्वारा पैदा किये गये धन से पलते हैं, पुष्ट होते हैं,उनके बराबर हीन निकृष्ट कोई भी नहीं है। वे लोग पग-पग पर तिरस्कृत होते हैं। देखो! कोयल परपुष्टकाक से पुष्ट की जाती है इसीलिये वह उनके चोंचों के घातों से बार-बार कदर्थित होती है। इसके विपरीत सिंह अपने पराक्रम से उपार्जित द्रव्य से बलवान होता है। इसलिये उसे कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता। मैं अपने उपार्जित द्रव्य से द्यूत न खेल पिता के द्रव्य से खेल रहा था इसलिए मेरी यह दशा हुई है। मुझे जो खंजाची सरीखे छुद्र पुरुष से अपमानित होना पड़ा है। उसमें सर्वप्रधान यही कारण है। यदि मैं अपने हाथ से पैदा किये गये द्रव्य से खेल खेलता तो इसकी क्या मजाल? इससे अधिक उच्च अधिकारी भी मुझसे आधी बात भी न कहता और बिना कुछ कहे सुने ही मेरी आज्ञा का पालन करने पर उतारु हो जाता। परन्तु यह सब कुछ नहीं है इसीलिये ऐसा यह मौका आया है।

मेरे पिता की यद्यपि यह इच्छा नहीं है। वे मुझसे कुछ द्रव्य उपार्जन नहीं कराना चाहते और इसीलिये उनकी आज्ञा से समस्त मनोरथ पूर्ण भी होते रहते हैं परन्तु तो भी यह अपमान मेरे मन को अधिक खेद खिन्न कर रहा है। जो लोग उन्नत मनवाले मनस्वी होते है। वे जिस प्रकार गुरु पानी का कभी भोग नहीं करते उसी प्रकार अपने पूर्व पुरुषों द्वारा उपार्जन की गई लक्ष्मी का भी भोग नहीं करते। वे गुरुपत्नी सेवन के समान उसके सेवन करने में भी पाप समझते हैं। सज्जन लोग जो पुत्र आदिक को अपने

द्वारा तन, मन से उपार्जन किये गये धन से सर्वप्रकार पोषण करना योग्य बतलाते हैं उसमें संतान का किसी प्रकार पाल पोसकर बड़ा कर देना ही हेतु है। जिस प्रकार नवीन सूर्य के उदय से कमल खिल जाते हैं उसी प्रकार जिस पुरुष के उत्पन्न होने से उसके सम्यक् चारित्र कुटुंबियों के मन प्रफुल्लित न हुये उस मनुष्य का वह जीवन, वह चारित्र किस काम का? उसके कुटुम्बियों को सिवाय दुःख होने के कोई फल नहीं होता। हाय! मैंने द्यूत सरीखे निंद्यकर्म में अपना मन लगा बड़ा ही अनर्थ किया है। इसके बराबर मुझे इस समय कोई भी बुरा कार्य नहीं दिख रहा है। इस कार्य के करने से मैं अपने पिता को किसी प्रकार अपना मुँह दिखलाने योग्य नहीं हूँ।

संसार में एक वे ही लोग तो धन्य हैं और वे ही जीवित समझने के योग्य हैं जिन्होंने अपने जन्म में कभी भी मानभंग का दुःख नहीं उठाया। जो द्रव्य नियत समय पर मिलता है, आवश्यकता के समय न मिलकर जो दाता की इच्छा से मिलता है, जो बिना याचना के प्राप्त न होकर याचना से ही प्राप्त होता है, और जो दुःख पूर्वक यथाकंचित् मिलता है, वह सब तात्कालिक इच्छा की पूर्ति का कारण न होने से अदत्त (बिना दिये हुये) के समान गिना जाता है। और उसके लेने में चोरी करने के बराबर दुःख उठाना पड़ता है। जिन लोगों को धन देने का वचन देकर भी धन नहीं दिया जाता वे लोग सेवक के समान है। जिस प्रकार कोई अपने नौकरों के मान अपमान का ख्याल नहीं करता उसी प्रकार उनके भी मानापमान का कोई ध्यान नहीं रखता।

यह मनुष्य संसार में तब ही तक तो प्रशंसनीय है, जब तक सुमेरु पर्वत के शिखर के समान उच्च है और तब ही तक कीर्तिशाली है जब तक कि किसी के सामने अपने दीन वचन नहीं बोलता किसी चीज की याचना नहीं करता।

बिना धन के इस संसार में अच्छे से अच्छे काम भी शोभित नहीं होते। जिस प्रकार वृद्धा वेश्या चाहे कितना भी गहीना पहिन ले और बढ़िया से बढ़िया वस्त्र ओढ़ ले परन्तु यौवन के बिना उसकी कोई भी शोभा नहीं होती। उसी प्रकार निर्धन गृहस्थ चाहे कैसी भी बढ़िया क्रिया करे, धन के बिना वह कभी लोक में प्रशंसित नहीं होता। इसलिये अब मुझे इस मेरे पिता द्वारा उपार्जन किये गये धन से कोई काम नहीं है, वह मुझे ढेले के समान है। मैं कहीं परेदश में जाकर अवश्य ही उत्तम धन पैदा करुँगा। यह जो मेरे साथ मेरी अर्द्धांगिनी है उसे तो इसके पिता के घर रख जाऊँगा और मैं तन,

मन लगाकर निर्मल निर्दोष लक्ष्मी के उपार्जन करने का उद्योग करूँगा।''

यद्यपि मनस्वी जिनदत्त इस प्रकार के सद्भावों से प्रेरित हो अपने मन की बात मन में ही छिपाकर रहने लगे तो भी उनके वृतांत का पता इनके पिता को किसी न किसी प्रकार लग गया और उन्होंने इन्हें अपने पास बुला भेजा। पिता की आज्ञानुसार जब जिनदत्त इनके पास आये तो वे इस प्रकार कहने लगे –

''प्यारे पुत्र! यद्यपि तुमने मुझसे कोई बात नहीं कही है तो भी मैंने जो तुम्हारे साथ कोषाध्यक्ष ने बर्ताव किया है उसको यथावत् सुन लिया है। उसके सुनकर मैंने सैंकड़ों और हजारों धिक्कारे खंजाची को दी हैं इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है। मैं तुम्हारे सिर पर हाथ रखकर शपथ खाता हूँ, मैं जो कुछ भी तुमसे कह रहा हूँ वह अक्षरश: सत्य है। अब तुम खेद छोड़ दो। तुम्हारी इच्छा हो उसे अच्छी तरह पूरी करो। इस धन धान्य आदि संपत्ति पर मेरा जो अधिकार तुम समझ रहे हो वह नाममात्र का है। इस समस्त के तुम्हीं अधिकारी हो। तुम्हें जो अच्छा लगे वह इसका कर सकते हो मेरे आँखों के तारे लाल! यह समस्त विनोद तुम्हारे सरीखे विद्वान कुलीन पुरुष को शोभित नहीं होता। लक्ष्मी का अच्छा और बुरा दोनों प्रकार से उपयोग हो सकता है परन्तु अच्छा उपयोग करना ही मनुष्य को उचित है। जिन्होंने इसका जुआ आदि में बुरा उपयोग किया है। उन्होंने जो जो पाप उपार्जित किये हैं जो जो कष्ट भोगे हैं उन सबका इतिहास तुम्हें मालूम ही है उससे यहाँ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये यदि तुम्हें इसका उपयोग करना ही अभीष्ट है तो तुम विशाल जिनेन्द्र भगवान के मंदिर बनवाओ, उनसे सुवर्ण, रूप्य और रत्नों की निर्मित मूर्तियाँ स्थापित करो, रात-दिन जिनेन्द्र भगवान की गाजे-बाजे के साथ पूजा करो। श्रावक-श्राविका मुनि आर्यिका रूप चारों संघों को यथाविधि दान दो। मुनियों के लिये सिद्धांत, न्याय, साहित्य, व्याकरण आदि विधाओं के शास्त्र लिखा-लिखाकर भेंट में अर्पण करो, कुएँ बावड़ी, तालाब आदि खुदाओ और विचित्र बाग-बगीचे लगवाओ। इनके करने से तुम्हारी जगद्व्यापिनी कीर्ति होगी, पुण्य प्राप्त होगा और तुम्हारा मन भी रंजित होगा।''

पिता का यह उपदेश यद्यपि यथार्थ और हितकर था तो भी जिस प्रकार मुनि के मन में बिलासनी स्त्री का प्रवेश नहीं होता उसी प्रकार वह पुत्र जिनदत्त के मन में नहीं समाया उन्होंने अपने विचारों की तरंगों में उस पर कुछ भी ध्यान न दिया। उन्होंने नीचे

मुँह कर जो भी सुना उसका पिता को 'हाँ' के रूप में उत्तर दे, टाल दिया और प्रणाम कर वहाँ से उठ सीधे अपनी कांता के पास आये।

विमला पति की परिचर्या करने में बड़ी ही चतुर थी उसे शास्त्रोक्त लौकिक पति के प्रति पत्नी के समस्त कर्त्तव्य मालूम थे इसलिये ज्योंहि उसने अपने वासस्थान आये हुये पति को देखा त्योंहि अथ्युत्थान आदि से यथायोग्य सत्कार किया और उनके मनोगत भाव को समझकर विलास आदि से मन में प्रफुल्लता का संचार करने का उद्योग करने लगी। जब अधिक बातचीत हुई और अपने पति का चित्त उसने यथावत् प्रकृतिस्थ न देखा तो यह सोचकर कि शायद अपने ससुर के घर पहुँचकर ये प्रकृतिस्थ हो जायेंगे उनसे बोली –

"प्यारे आर्य पुत्र! आज मेरे पिता के घर से आप और मुझे दोनों का शीघ्र बुलाने का समाचार आया है। कहिये! इसमें आपकी क्या सम्मति है? जो उचित समझें वह करें।"

जिनदत्त ने जब अपनी प्यारी के मुख से यह समाचार सुना तो उन्होंने भी अपने अभीष्ट को सिद्ध होता देखा और इसी बहाने इसको इसके पिता के घर पहुँचा देना भी हो जायेगा यह बात सोची तो उन्होंने उत्तर दिया –

"क्या हर्ज है? जैसी तुम्हारे पिता की इच्छा है वह हमें भी मान्य है" इस प्रकार जब उन दोनों पति–पत्नियों की सम्मति हो गई तो जिनदत्त ने अपने पिता की सम्मति लेना भी उचित समझा। सेठ जीवदेव ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने भी यही सोचकर की पुत्री वहाँ जाने से ठीक हो जायेगी आज्ञा दे दी।

पिता की आज्ञा और अपनी इच्छा होने से जिनदत्त पत्नी विमला के साथ चंपापुरी की तरफ रवाना हो गये और यथा समय वहाँ जा पहुँचे।

सेठ विमलचंद्र को जिनदत्त के मन उद्विग्न होने का कारण पहिले से ही मालूम हो चुका था इसलिए उन्होंने अपने जमाता का बड़ा ही सत्कार किया और स्वागत पूर्वक अपने घर ले जाकर उन्हें प्रीति से ठहराया।

चंपापुरी में उस प्रकार प्रमद नाम का एक बगीचा था उसमें विशाल–विशाल काम

मंदिर बने थे। सुंदर कर्णप्रिय शब्द करने वाले भ्रमरों के समूह से वेष्टित अनेक तोरण शोभित हो रहे थे, मंद मंद सुगंधित पवन अपेन वेग से कामिनियों के केशों को चंचल करता था, सुगंधित पुष्पों के आमोद से कोकिलाएँ मत्त हो गाती थीं, अनेक फलों के भार से वृक्ष नम्र हो रहे थे और क्रीड़ा पर्वत, वापी, बल्ली आदि मन को हरण करने वाले थे इसलिये यह उद्यान उस समय सर्वप्रकार से समस्त इंद्रियों को सुखदायक मालूम पड़ता था।

हमारे चरित नायक को अपने ससुर के घर आये पांच ही दिन बीते थे कि ये इसी उद्यान में अपनी कांता के साथ क्रीड़ा करने के लिये चल दिये और वहाँ बहुत देर तक क्रीड़ा करते रहे। इस उद्यान में नाना तरह की वनस्पतियाँ थीं। क्रीड़ा करते-करते इनकी दृष्टि एक वनस्पति पर जा पड़ी। इसमें जो कोई इसे धारण कर ले उसे ही अदृश्य कर देने का गुण था। यह देख सहसा इनके मन में यह कल्पना उठ खड़ी हुई कि -

"यद्यपि मुझे यहाँ किसी प्रकार की कोई तकलीफ नहीं है सब प्रकार से सब तरह से सुख ही सुख मिल रहे हैं तो भी अपने घर को छोड़ ससुर के घर रहना सर्वथा अनुचित है। और अपने घर भी मानभंग होने से जाने को जी नहीं चाहता।" यदि मैं कहीं जाने का भी चित्त करूँ तो साथ में इस प्यारी कांता को ले जाना उचित नहीं है और यहाँ छोड़ने से यह मेरे वियोग को न सह सकेगी इसलिये बड़ी कठिन समस्या आ पड़ी है। परन्तु यह सब होते हुये भी मैं अपने धन उपार्जन करने के उद्देश्य को नहीं भूल सकता। इसके सिद्ध करने में मुझे कितनी भी कठिनाईयाँ झेलनी पड़ें सब मंजूर है। इसलिये पूर्वापर विचारने से घर जाने, यहाँ रहने और इसको साथ ले चलने की उपेक्षा यही उत्तम है कि इसको यहाँ ही छोड़ दिया जाय और इस औषधि के प्रभाव से अंतर्हित हो ही कहीं को चल दिया जाये। जब तक लक्ष्मी मेरे अधीन न होगीं, जब तक मैं अधिक धनाढ्य न होऊँगा, तब तक ये भोगे गये विषय विष के समान ही भंयकर मालूम पड़ेंगे इसलिये लक्ष्मी को वश करने के लिये समस्त दु:ख सह लेना ही योग्य है।

ज्योंहि यह विचार मनस्वी जिनदत्त ने हृदय में निश्चित किया त्योंकि उन्होंने वह औषधि ले ली और अपनी शिखा में उसे बांध अंतर्हित हो कहीं को चल दिये।

जिनदत्त को न आये जब बहुत देर हो गई और उनके आने की आशा सर्वथा

जाती रही तो विमला को बड़ा ही दु:ख हुआ। वह उनके वियोग से व्याकुल हो समस्त दिशाओं–विदिशाओं में आशाभरी दृष्टि से देखने लगी और चक्रवात से विहीन चक्रवाही के समान फूट–फूटंकर रो इस प्रकार विलाप करने लगी –

"हाय! मेरे जीवनाधार नाथ! ऐ मेरे हृदय मंदिर के आराध्य देव! हा! स्वाभाविक प्रेम के भंडार आर्यपुत्र! आप कहाँ चले गये। मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया जिससे रुष्ट हो मुझे आपने छोड़ दिया। नहीं! नहीं! आप ऐसे कठोर तो न थे अवश्य ही इस समय आप मेरे साथ हंसी कर रहे हैं। प्राणनाथ! कृपाकर अब आप शीघ्र ही आईये। बहुत हंसी हो चुकी अब और अधिक वह नहीं सही जाती। बिना विलंब के मुझे अपना मुख चंद्र दिखा प्रफुल्लित कीजिए। मेरा मन मक्खन के समान कोमल है वह इस समय आपके विरह रूपी अग्नि से तपाया जा रहा है यदि सर्वथा वह विलीन ही हो गया तब फिर आपका आना ही किस काम का होगा – आप आकर ही क्या करेंगे? इसलिये प्राणनाथ! आईये, शीघ्र आइये और इस संतृप्त करने वाली विरहाग्नि को अपने संयोग रूपी जल से बुझाकर शीघ्र शांत कीजिए। हाय! ये वे ही लतायें हैं वे ही वृक्ष हैं, वे ही क्रीड़ा पर्वत हैं और वे ही पक्षी हैं परन्तु केवल मेरे प्राणनाथ ही नहीं हैं न जाने कहाँ मेरी दृष्टि को धोखा दे चले गये। हे प्रभो! आपको मेरा बड़ा ही स्नेह था, बड़ी ही मुझमें प्रीति थी, मुझे बहुत ही अच्छा मानते थे। किसी कारण वश मेरे रुष्ट हो जाने पर आप सैकड़ों चाटु वचन कहा करते थे, परन्तु हा! आज क्या आप ऐसे स्नेहीहीन कठोर हो गये अथवा मुझे दोषपूर्ण समझने लगे जो मेरे बार–बार रोने पर, पछाड़ा खा–खाकर गिरने पर भी आपका हृदय नहीं पसीजता। उसमें स्नेह की तरंग नहीं उठती जो मुझे और नहीं तो कम से कम एक वचन तक का भी दान नहीं देते। हाय! आज वे आपके चाटुकार, वे आपके विश्रंभ और वे आपके कौशल कहाँ चले गये? आपके बिना मुझे अपना कोई नहीं दिख रहा है, आप मुझको समय–समय पर धैर्य दिलाते थे, आप मेरे मन कुसुम को विकसित करते थे। परन्तु अब आपके यहाँ न रहने से मैं रात्रि में सूर्य के बिना कमलिनी के समान शोकग्रस्त हो गई हूँ। मुझे प्रफुल्लित करने वाला अब कोई भी नहीं है। न जाने मेरा वह आपके साथ संयोगवाला शुभदिन कब होगा? नहीं नहीं! मैं भूल रही हूँ! मैं जो कुछ भी इस समय कह गई हूँ सब मिथ्या है हाँ! मैं बड़ी ही मूर्खा हूँ, मैं अपने पाप को और भी अपने पति की स्नेहहीन आदि शब्दों से निंदाकर बढ़ा रही हूँ। नहीं! मेरे पति मेरे सर्वगुण संपन्न प्राणनाथ कभी ऐसे नहीं हैं और

न हो सकते हैं वे बड़े ही दयालु हैं मुझे स्वयं कभी नहीं छोड़ सकते और न इस प्रकार दु:खित अवस्था में ही मुझे देख सकते हैं। अवश्य ही उन्हें किसी ने किसी ने हर लिया है और वह हरने वाला कोई नहीं है मेरा पूर्वकृत कर्म ही है क्योंकि मैंने अवश्य ही पूर्वभव में किसी न किसी परस्पर अमित प्रेम करने वाला युगल को वियुक्त किया है नहीं तो क्या आज मेरी यह दशा होती? जीवों को अपने कृत कर्मानुसार ही फल मिला करता है। यह जो मुझे प्रिय वियोगजन्य दु:ख मिला है उसमें पूर्व संचित कर्म ही कारण है।

हा! स्त्री पर्याय बड़ी ही खराब है। इसमें महान दु:ख है। इसके समान निंद्य कोई पर्याय नहीं। इसमें मेरा अब कभी जन्म न हो और यदि किसी प्रकार हो ही जाये तो कभी इसमें प्रिय वियोग का अवसर न आवे। संसार में प्रिय वियोग के समान कोई पदार्थ दु:खद नहीं है। इसलिये इसका न होना ही अच्छा है।

हे वन देवताओं! मुझ पर दया करो। मेरी दीन प्रार्थना की तरफ कुछ ध्यान दो। मुझे पति दर्शन दे मेरा उद्धार करो। मैं शोकसागर में डूबी जा रही हूँ। मेरी इस अवस्था पर क्या आपको करुणा नहीं आती? मेरा इस समय सहायक कोई नहीं है। दीन दुखिया नि:सहाय का सहाय करना आपका कर्त्तव्य है।''

हमारे चरितनायक की अर्द्धांगिनी विमला जब उनके वियोग में अतिविह्वल हो गई और सखियों के बहुत प्रकार से समझाने पर भी शांत न हुई तो सखियाँ उसे जिस किसी तरह उसके पिता के पास लायीं और पिता भी समस्त वृत्तांत जानकर उसे इस प्रकार धैयपूर्वक समझाने लगा –

''पुत्री विमला! भाग्य में जो होता है वही हमारे तुम्हारे सबके भोगने में भी आता है। तुझे इस समय जो पति वियोग का दु:ख भोगना पड़ा है उसमें तेरा पूर्व कृत अशुभ कर्म ही कारण हैं। अशुभ कर्म के होने से ही दु:ख उठाने पड़ते हैं। सुख की इच्छा करने वालों को अशुभ कर्म का नाश और शुभ कर्म करना ही श्रेष्ठ है। शोक करने से अशुभ कर्म का बंध होता है इसलिये प्यारी पुत्री! तू शोक को सर्वथा छोड़ दे। यदि तेरे भाग्य में होगा तो तुझे फिर पति संयोग मिलेगा। इसलिये इस समय पूर्व अशुभ कर्म की शांति एवं आगामी शुभ कर्म की प्राप्ति के लिये जिनेन्द्र भगवान के मंदिर में रहकर धर्म उपार्जन कर। श्रेष्ठ–श्रेष्ठ आर्यिकाओं के साथ संगति कर। अपनी सखियों के साथ धर्म

की चर्चा करना प्रारम्भ कर और पात्रदान आदि भी किया कर। हम लोग तेरे पति की तलाश में हैं यदि वे कहीं मिल जायेंगे तो अवश्य ही उनका तेरे साथ संयोग होगा।''

पिता विमलचंद्र का जब पुत्री विमला ने यह सांत्वना भरा उपदेश सुना और उसकी यथार्थता समझती तो जिस किसी तरह धैर्य धारण किया और जिनपूजा, शास्त्रपठन, सदुपदेशश्रवण, वैय्यावृत्यकरण आदि शुभ क्रियाओं में अपना चित्त लगाकर रहने लगी।

जिनदत्त के पिता और ससुर के पुरुषों ने जब इनकी खोज करना प्रारंभ की और कहीं पता न लग पाया तो वे भी बिचारे मौन साध कर भाग्य के भरोसे रहने लगे।

हमारे चरितनायक औषधि के प्रभाव से अदृश्य हो चलते–चलते दधिपुर नामक नगर पहुँचे और वहाँ एक बाहिर के विशाल बगीचे में जाकर ठहर गये। यह बगीचा फल पुष्पों से हरा भरा न था, इसमें यद्यपि जलसेक आदि के चिन्ह दिखलाई पड़ रहे थे तो भी केवल वृक्षों के रुंडमात्र ही खड़े थे। जब यह सब चरित्र जिनदत्त ने देखा तो ये उसकी इस दशा का कारण का विचार करने लगे और अपनी ऊहापोह से अपनी शंकाओं का उत्तर अपने आप देते हुये वास्तविक तत्व को जानने की चेष्टा करने लगे।

जिस समय ये इस बात का निश्चय कर रहे थे उसी समय कुछ पदाति (प्यादे) लोगों से वेष्टित जंपान (एक सवारी का नाम है) में बैठा हुआ एक समुद्र नाम का धनाढ्य वैश्य वहाँ आया और इनकी कांति तथा चेष्टा आदि से महाविद्वान समझ इन्हें वासस्थान का परिचय पूछने लगा। उत्तर में जिनदत्त ने ''महाभाग! मैं यों ही पृथ्वी पर इधर–उधर घूमता फिरता हूँ। मेरे यहाँ आने का सिवाय देशाटन के कोई प्रधान कारण नहीं है।'' आदि कहकर कुशल क्षेम और उसके बाद सेठ समुद्र के उस बाग को हरे भरे हो जाने का कारण पूछा पर जिनदत्त ने उत्तर दिया –

''यदि मुझे मेरे कथनानुसार समग्र सामग्री उपस्थित की जायें तो इस बाग को नंदन वन के समान हरा भरा फल पुष्पों से युक्त कर सकता हूँ।

सेठ समुद्र ने जब इस प्रकार साहस भरी जिनदत्त की बात सुनी तो उसने उनकी बताई हुई समस्त सामग्री शीघ्र ही अपने भृत्यों से उपस्थित करा दी। यही देख जिनदत्त ने भी दोहदादिक उपायों से उस उद्यान को हरा भरा कर दिया। उसमें पहिले जो

अशोक वृक्ष सूखे खड़े थे। अब कामिनी स्त्रियों के पादताडन से उत्पन्न पुलकों के समान गुच्छों से शोभित जाग पड़ने लगे। जो बाण वृक्ष रुंड मात्र खड़े थे। वे कामदेव के बाण के समान पति वियुक्त स्त्रियों के मन को भेदने वाले पुष्प और पंखों से युक्त हो गये। जो तिलक वृक्ष पहिले नाम मात्र के ही तिलक थे वे अब पुंश्चली स्त्रियों के कटाक्षण बाणों से आहत हो पुष्पोंसे युक्त होने के कारण वास्तव में वन लक्ष्मी के तिलक हो गये। जो कुरबक पहिले वास्तव में कुत्सिव रब करने वाले (पुष्प न होने से भद्दे लगने वाले) थे वे ही अब स्त्रियों के स्तन संसर्ग से आहत हो पुष्पित होने के कारण गुंजारते हुये भ्रमरों के शब्दों से सुरवक-सु-सुंदर रवक-शब्द वाले हो गये। जो वकुल वृक्ष पहिले बिलकुल शुष्क (नीरस) थे वे ही अब प्रमदाओं द्वारा किये गये मद के कुल्लों से सिक्त हो कुसुमों की सुगंधि से पूर्व पीत मद को उगलते हुये के समान जान पड़ने लगे। जो चंपक वृक्ष पहिले रुंड मुंड खड़े थे। वे पुष्पों से युक्त होने के कारण प्रवेश करते हुये काम के स्वागतार्थ उजाले गये मंगल दीपों के समान शोभित होने लगे। जो कुंकुम वृक्ष पहिले अशुचिता से उत्पन्न होने के कारण अस्पृश्य थे वे ही पुष्पों से सुगंधित हो जाने के कारण खल के समान मस्तकों पर अपना दखल जमाने लगे और इसी प्रकार अन्य बहुत से जो वृक्ष पहिले खराब हालत में थे वे ही जिनदत्त द्वारा अपने-अपने योग्य सेक धूप पूजा आदि कारणों के मिल जाने से प्रफुल्लित हो गये।

जिनदत्त द्वारा इस प्रकार जब वह उद्यान फल और पुष्पों से शोभित कर दिया गया तो वहाँ आ आकर सुंदर पक्षीगण किलोल करने लगे। आम की कलियों के भक्षण करने से मत्त हुई कोकिलायें मधुर-मधुर शब्द करने लगी। सुगंधित पुष्पों की सुगंधि से भ्रमर सुखकारी मोदवर्धक गुंजार करने लगे। माधवी लताओं के मंडप में कामी लोग क्रीड़ा करने लगे। नागवल्ली के आलिंगन करने से सुपारी के वृक्ष सफल जान पड़ने लगे। आकाश से देखने के लिये पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई किन्नरियों के गीतों से मृगगण स्तब्ध हो दुर्वाभक्षण छोड़ स्तब्ध होने लगे। लताओं के भीतर शक और सारिकायें बोलने लगीं। अपने-अपने संकेत बांध अभिसारिकायें आने लगीं। वृक्षों के नीचे तपस्वियों को ध्यान में मग्न देख खेचर, भूचर और अमरगण एकत्र होने लगे। अधिक फलों के भार से झुक-झुक कर वृक्षों की डालियाँ टूटने लगीं और रति के श्रम को हरण करने वाली सुंदर पवन बहने लगी।

जब समस्त मनोहारी उद्यान के योग्य इस प्रकार वह उद्यान हो गया तो सेठ समुद को अति आनंद हुआ। उसने उसकी खुशी में एक चैत्रोत्सव कराया और जिनदत्त का उसमें सद्वस्त्र भूषण आदि से महा सत्कार कर उपस्थित लोगों को परिचय कराया जिससे कि उनकी वहाँ राजा आदि प्रधान पुरुषों में खूब ही कीर्ति हुई

जिनदत्त के गुणों पर मुग्ध हो उद्यान के अधिपति सेठ समुद्र इन्हें अपने घर ले गये और उन्हें वहीं रखने लगे। जिनदत्त को रहते रहते वहाँ जब कुछ दिन बीत गये तो सहसा इनके मन में फिर वही विचार उठ आया और सोचने लगे -

''नहीं! मुझे इस सेठ के घर में रहना बिल्कुल उचित नहीं है। मैं जिस उद्देश्य से परदेश भ्रमण कर रहा हूँ वह अभी पूरा नहीं हुआ है। अभिसारिका के समान चंचल लक्ष्मी अभी तक मेरे वश में नहीं हुई है, और इसका वश करना मेरा प्रधान कर्त्तव्य है, क्योंकि इसके बिना मनुष्य के धर्म काम और अर्थ तीनों पुरुषार्थ सिद्ध नहीं हो सकते। न तो इसके बिना दान दे धर्म ही उपार्जन कर सकते हैं, न इसके बिना अभीष्ट पदार्थों का संग्रह कर काम ही सिद्ध हो सकता है और न इसके बिना किसी तरह का व्यवसाय कर अर्थ ही उपार्जन कर सकते हैं। इसलिये सबसे पहिले पुरुषोर्थो के मूल भूत धन का पैदा करना ही कार्यकारी है।''

जब इस प्रकार जिनदत्त के मन में पूर्व भाव का फिर उदय हो आया एवं धन पैदा करना आवश्यक समझा तो उन्होंने सेठ समुद्र से भांड माँगें और जहाज द्वारा समुद्र यात्रा कर सिंहल द्वीप जाने का विचार प्रकट किया।

समुद्र सेठ ने जब जिनदत्त के उक्त प्रकार वचन सुने तो उसने कहा - ''महाभाग! यदि आपकी धन उपार्जन करने की इच्छा है तो मेरे साथ क्यों न चलियेगा। मैं भी सिंहल द्वीप विचित्र-विचित्र भाड़ों को ले शीघ्र ही जाना चाहता हूँ'' कहा! जिसे सुनकर जिनदत्त ने स्वीकार कर लिया और दोनों जने बहुत से आदमियों के साथ सिंहलद्वीप की ओर रवाना हो गये।

इस प्रकार श्रीमद्-आचार्य गुणभद्रभदंतविरचित संस्कृत जिनदत्त चारित्र के भावानुवाद में तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।।3।।

***

चतुर्थ सर्ग

सेठ समुद्रदत्त और हमारे चरितनायक जिनदत्त व्यापार करने की तीव्र इच्छा से सिंहलद्वीप की तरफ रवाना हो क्रमश: समुद्र तट भूमि पर पहुँचे और वहाँ से शुभ मुहूर्त शुभ दिन में जिनेन्द्र भगवान की पूजा आदि कर उन्होंने जहाज द्वारा यात्रा करनी प्रारंभ कर दी।

जिस दिन हमारे इन दोनों व्यापारियों ने समुद्र यात्रा प्रारंभ की भाग्य वश उसी दिन से हवा इनके अनुकूल बहने लगी। जिससे कि ये अपने समस्त धन धान्य के साथ सुरक्षित रीति से शीघ्र ही सिंहलद्वीप जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर इन्होंने अपने साथ के मनुष्यों को यथायोग्य स्थान पर भीतर और बाहिर ठहरा दिया एवं कुमार जिनदत्त सर्वज्ञोपदिष्ट धर्म के गाढ़ भक्त होने के कारण एक श्राविका सम आचरणवाली वृद्धा के घर ठहर गये और इनके कथनानुसार ही उसके यहाँ खान-पान की समस्त व्यवस्था होने लगी।

जिस नगर में जाकर ये लोग ठहरे थे और जहाँ इन्होंने अपने माल भांड बेचना चाहा था वहाँ का राजा मेघवान था। इसकी विजया नामक एक रानी थी और उससे श्रीमती नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई थी।

राजपुत्री श्रीमती उस समय युवावस्था के प्रारंभ में पैर रख चुकी थी इसका रूप बड़ा ही सुंदर और सौम्य था परन्तु जिस प्रकार चन्द्रमा अल्प कलंक से दूषित होने के कारण निंदनीय गिना जाता है उसी प्रकार यह भी एक रोग से आक्रांत होने के कारण लोगों को भयंकर मालूम पड़ती थी और वह रोग यह था कि जो कोई मनुष्य इसके समीप होता था वह ही यमराज के घर का अतिथि बन जाता था। पुत्री की यह अवस्था देख घर के सब माता-पिता आदिक इससे विरक्त हो चुके थे। इसलिये इन्होंने इसे दूर एक अन्य सुंदर महल में रख छोड़ा था एवं नगरवासियों से यह सादर

प्रार्थना कर ली थी कि –

"हे प्रजा! मेरे पूर्व जन्म के पाप से एक पुत्री हुई है और यह भयानक रोग से आक्रांत है इसलिये जब तक कोई उपयुक्त वैद्य न आ पावे तब तक कृपाकर हर एक घर से एक–एक आदमी आवे और मेरी पुत्री के घर में आकर रहे।' जिससे कि समस्त प्रजा अपने–अपने घर से एक–एक आदमी बारी–बारी भेज दिया करती थी। इसी नियम के अनुसार जिस समय कुमार जिनदत्त वृद्धा के पास बैठे थे उसी समय एक नापित आया और वृद्धा को लक्ष्य कर कहने लगा –

"वृद्धे! राजाज्ञानुसार तुम्हारे पुत्र की आज बारी है। उसे यथासमय तुम राजपुत्री के घर भेज देना।"

नापित के मुख से ज्योंहि यह वचन वृद्धा ने सुना तो वह सन्न रह गई। उसने फूट–फूटकर रोना शुरु किया। उसे जिस प्रकार आंगन की पृथ्वी के कण चुगने वाले पक्षियों को दु:ख होता है उसी प्रकार चित्त में महादु:ख हुआ। वह बिलख बिलख कर इस प्रकार बिलाप करने लगी –

"हाय! मैं बड़ी ही मंदभागिनी हूँ। छोटी अवस्था में ही पति मर जाने से मैंने जो जो दु:ख सहे हैं उनकी याद करते ही छाती फटती है। मेरी समस्त ऐहिक सुख प्राप्ति की आशा तो उसी दिन से नष्ट हो गई। परन्तु ज्यों त्यों करके मेरे जो इकलौता पुत्र है उसी के मुँह को देख देखकर अपने जीवन को किसी प्रकार सुखी समझ दिन बिना रही हूँ। मालूम पड़ता है अब वह बात भी मेरे देव को असह्य है। उसे इतना सुख देना भी मेरे लिये अनिष्ट है इसीलिये आज मेरे पुत्र को हरण करने के लिये नाई द्वारा आज्ञा भिजवाई है। हा! मेरे आँखों के तारे! मेरे जीवन के सितारे! मेरे प्यारे लाल! अब मैं तेरे बिना कैसे जीवित रह सकूँगी। हा! हत्यारे देव! क्या मुझे दिन को दिखलाने के लिये तूने इतने दिन तक जीवित रख छोड़ा था?"

वृद्धा के इस प्रकार करुणा भरे वचनों को सुनकर कुमार जिनदत्त का हृदय भर आया। वे करुणा रस से पूरित होकर बोले –

"माँ! मैं समस्त तेरे दु:खों को दूर कर सकता हूँ। मैं विपत्तियों के नाश करने में सब प्रकार से समर्थ हूँ। तू अपने उसी एक पुत्र को पुत्र न समझ, जैसे वह पुत्र

है वैसे ही मैं भी तेरा एक पुत्र हूँ। माँ! जिस पुत्र के भेजने का समाचार सुन तू इतनी दु:खित हुई है। उसे तू मत भेज। उसके भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं ही वहाँ चला जाऊँगा और राजाज्ञा का पालन करने वाली तुझे बनाऊँगा।''

जिनदत्त के ये परोपकार परिपूर्ण वचन जब उस बुढ़िया ने सुने तो वह बोली –

''बेटा वह और तुम दोनों ही मेरे पुत्र हो। जिस प्रकार मनुष्य को दायीं और बायीं दोनों आँखें प्रिय होती हैं। उसी प्रकार मुझे तुम दोनों ही बराबर प्रिय हो। मैं तुममें से किसका नाश चाह सकती हूँ। बल्कि तुममें यह विशेषताहै कि तुम मेरे पुत्र से अधिक काम के समान सुंदर हो, महागुणी कुल के भूषण हो, इसलिये तुम्हारा तो अपने प्राण गँवा कर भी मुझे जिलाना इष्ट है।''

वद्धा के उपर्युक्त वचनों को श्रवणकर हमारे ओजस्वी चरित नायक के हृदय में किसी प्रकार का निम्न भाव नहीं आया। किन्तु वे अधिक उस बुढ़िया के दु:ख दूर करने के लिये सन्नद्ध हो गये और अपने मन में इस प्रकार के भाव करने लगे –

''संसार में उसी पुरुष का जन्म लेना सार्थक है। वही वास्तव में मनुष्य पर्याय का श्रेष्ठ फल प्राप्त करता है जो कि विपत्तियों से विपन्न लोगों का उद्धार कर उन्हें सुख से संपन्न कर देता है। इसके सिवा जो लोग अपना ही अपना स्वार्थ मांठा करते हैं अपने सुख में सुखी और दु:ख में दु:खी होते हैं अन्य लोगों के सुख–दु:ख की कुछ परवाह नहीं करते वे नहीं जन्मे के समान हैं। उनकी पैदाइश से संसार को कोई लाभ नहीं। देखो! वृक्ष जो कि एकेन्द्रिय महा अल्पज्ञानी हैं, वे भी जब अपने फलों से और छाया से अपने पास आते हुये पथिकों का उपकार करते हैं। उन्हें फल, पुष्प और छाया दे सुखी बनाते हैं तब जो मनुष्य पंचेन्द्रिय उनकी अपेक्षा महाज्ञानी हैं, उन्हें क्या परोपकार सरीखा श्रेष्ठ कार्य करना न चाहिये। उन्हें उसके करने में क्या प्रयत्नशील न होना चाहिये? यदि दूसरे का हित होता हो और उसमें अपने प्राणों के जाने की भी संभावना हो तो उसे खुशी से कर डालना चाहिये। परोपकार की दीक्षा से दीक्षित हो यदि उसके पालने में प्राण तक भी चले जायें तो कोई डर नहीं। उसे भंग न होने देना चाहिये। चंदन में यह एक आश्चर्यजनक गुण है। वह स्वयं जल कर दिशाओं को सुगंधित कर देता है और अपने परोपकारित्य का ज्वलंत उदाहरण लोगों को देकर भस्म हो जाता है। इसलिये जो मैं पहिले वृद्धा को वचन दे चुका हूँ, जो उसके दु:ख

दूर करने की अटल प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। उससे मुझे कभी विचलित न होना चाहिये। अवश्य ही इस दु:खिनी वृद्धा का दु:ख दूर कर देना मेरा कर्त्तव्य है।''

इन विचारों को विचारते-विचारते जिनदत्त के हृदय में एक अपूर्व ही आनंद की तरंग उठी, वे बुढ़िया से बार-बार अनुग्रह करने लगे और आखिर उससे अपनी वहाँ जाने की स्वीकारता ले ही ली।

बुढ़िया की सम्मति पाकर जिनदत्त ने स्नान किया, सुगंधित द्रव्य से शरीर का लेप किया, समस्त भूषण पहिने और पुष्प, तांबूल, वस्त्र, गंध आदि से सन्नद्ध हो चलने की तैयारियाँ करने लगे। चलते समय साथ में इन्होंने शस्त्र लेना भी योग्य समझा। वसुनंद और कृपाण इन दो शस्त्रों को दोनों हाथों में ले राजपुत्री के महल की ओर चल दिये।

वीर वेश में सज धज कर राजमार्ग से जाते हुये युवा जिनदत्त साक्षात् विजयाभिलाषी काम सरीखे जान पड़ने लगे। जो पुरुष इनकी तरफ दृष्टि डालता था वही गहरे आश्चर्य सागर में डूबकी लगाने लगता था। जो स्त्री इनकी तरफ देखती थी वह ही इनके सौंदर्य और गमन पर आश्चर्यान्वित हो जाती थी। चलते-चलते हमारे युवक राजमंदिर के पास पहुँच गये। जब इन्हें राजा ने देखा तो वह पास में बैठे हुये लोगों से इनका समस्त परिचय 'कहां से आया है, कौन है, कहाँ को जा रहा है, आदि पाकर बड़ा ही दु:खित हुआ। उसके हृदय में उस समय गहरी चोट लगी। वह अपने उस दुष्कृत्य को बार-बार धिक्कारने लगा और सोचने लगा -

''हाय! मुझ सरीखे नीच पापी पुरुषों का जीना इस संसार में बड़ी ही निकृष्ट है। मैं राजा नहीं कसाई हूँ। मैंने अपनी पुत्री के छल से इस जगह कालरात्रि बनवा रखी है। हाँ! इसमें आकर प्रतिदिन संसार के श्रेष्ठ-श्रेष्ठ पुरुष अपना जीवन सर्वस्व खो देते हैं। अरे! यह मनुष्य पर्याय बड़ीं ही चंचल है। इसकी आयु बहुत ही कम है। देखो! इस समय सबके मन को मोहने वाला यह युवा जो दीख रहा है वह ही आज रात्रि में काल के गाल में पहुँचकर सर्वदा के लिये आँखें से ओझल हो जाएगा।

राज्य की लोग प्रशंसा करते हैं परंतु मुझ सरीखे पापकर्मीओं को वह सर्वथा निंदनीय है मैं बड़ा ही अन्यायी हूँ। अपराध होने से दण्ड देना लोगों को उचित है

परंतु मैं बिना ही अपराध के प्रतिदिन एक मनुष्य को काल के गाल में पहुँचा देता हूँ।

हे महाभाग! तू अपनी आकृति से कोई विशेष पुण्यशाली मालूम पड़ रहा है। तू अपने ही प्रभाव से अपनी रक्षा करना। तुझ सरीखे संसार में बहुत कम मनुष्य पाये जाते हैं। अतएव तेरे लिये यह कोई बड़ी बात नहीं।''

जिनदत्त को देखकर राजा इस प्रकार का विचार कर ही रहा था कि कुमार अपनी गति से पृथ्वी को चल विचल करते हुये राजकुमारी के महल तक जा पहुँचे और प्राणियों को भय करने वाले उस मकान के पहिले मंजिल पर देखते-देखते चढ़ गये।

कुमार ने पहिली मंजिले पर चढ़ उसकी समस्त दिशा विदिशाओं में देखा। वहाँ जब उन्हें कुछ न दिखा तो वे दूसरे मंजिले पर चढ़े और वहाँ सुंदर सेज पर बैठी हुई एक कुमारी को देखा। यह कुमारी खेद खिन्न चित्तवाली थी। इसके नेत्र विस्तृत किन्तु विषादयुक्त थे और द्वार की तरफ किसी के आगम की आशा कर देख रही थी। कुमार ने जब इसे देखा तो उन्होंने आकृति से इसे राजपुत्री समझा और इसलिये इसके पास की शय्या पर बैठकर बातचीत करने लगे। राजकुमारी ने जब इन्हें सुचतुर और मनोहर पाया तो तांबूल आदि से इनका आदर सत्कार किया और रात्रि बिताने की इच्छा से कथा पूछी। कुमार ने राजकुमारी के प्रश्नानुसार सुनने में मनोहरी कथा कहना प्रारंभ किया। अधिक रात्रि हो जाने से कथा सुनते-सुनते जब राजपुत्री सो गई और हुंकार देना बंद कर दिया तो जिनदत्त अपने आसन से उठे एवं ''न जाने क्या कारण है जो इसके समीप सोने से मनुष्य काल के गाल में फँस जाते हैं? क्या यह पूतना है या किसी राक्षस का यह काम है? या अन्य ही कुछ कारण है? इसकी वास्तविकता जानने के लिये मुझे यहाँ आज जागते रहना चाहिये। क्योंकि जो सो जाते हैं उन पर चोरों का आक्रमण होता है जीते जागते को कोई नहीं अकस्मात् लूट सकता।'' यह विचार कर महल की छत पर गये और वहाँ से एक मुर्दे को उठा लाकर अपनी जगह कपड़े से ढककर सुला दिया तथा स्वयं दीपक की छाया में खम्भे से छिपकर हाथ में तलवार ले सावधान हो बैठ गये।''

जिनदत्त इस प्रकार सावधान हो चारों तरफ दृष्टि दौड़ा-दौड़ाकर देखते रहते थे कि थोड़ी देर बार राजपुत्री के मुख से एक साथ निकलती हुई दो जीभें दिखलाई दीं। ये जीभें जलती हुई अग्नि के समान जाज्वल्यमान थी। इधर-उधर लहरा रही थी और

देखने वाले को भय करने वाली थी। ज्योंहि इन दोनों को कुमार ने देखा त्योंहि अपनी शंका का समाधान होते देखकर वे मुस्कराये और उत्सुकतापूर्वक सावधानी से उसे देखने लगे उन दोनों जीभों के बाद एक फन निकला। फन के बाद कालदंड के समान भंयकर लंबायमान शरीर निकला। समस्त शरीर निकल आने के बाद वह सर्प कुमारी की शय्या पर से उतरकर पास की शय्या पर गया और वहां पड़े हुये मुर्दे को अपने तीक्ष्ण दांतों से काटने लगा। सर्प के इस व्यापार से चकित हो जिनदत्त शीघ्र ही उसके पास आये और अपने हाथ की तलवार से दयारिहत हो उसके आठ टुकडे कर डाले। इसके बाद कुमार ने कुमारी की जो पेटी थी उसमें तो उन साँप के टुकड़ों को रख दिया। मुर्दे को दूर हटा अपनी तलवार म्यान में बंद कर ली और स्वयं सुख पूर्वक निश्चिंत हो गये।

कुमारी की जब ब्याधि दूर हो गई तो वह भी सुखपूर्वक निश्चितता से खूब सोई। उसने प्रात:काल शीतल मंद सुगंधित पवन से आहत हो आँखें खोली और अपने हलके शरीर तथा कृश हुये पेट को देखकर सोचने लगी –

''अहा! मेरे इस शरीर के सुखी होने का क्या कारण है? मेरा पेट आज मुझे बहुत ही हल्का मालूम पड़ता है। उत्साह भी आज अन्य दिनों से अधिक है। वास्तव में मुझे अपनी व्याधि आज नष्ट हुई मालूम पड़ती है इस व्याधि ने मुझे बड़ा ही दु:ख दिया। हाय इसके कारण मैं अपने कुटुंबियों से अलग हो गई। इसके कारण ही मैं इतने मनुष्यों के प्राण लेने की निमित्त हुई। पर आज बड़े हर्ष की बात है कि वह सर्वनाशिनी व्याधि इस महापुरुष के दर्शन मात्र से चली गई। अहा! इस संसार में यद्यपि शकल सूरत में सब मनुष्य प्राय: एक से दीखते हैं परन्तु उनमें गुणी परोपकारी विरले ही होते हैं। जिस प्रकार समस्त ग्रह एक से हैं परन्तु उनमें जो सूरज की महिमा है वह किसी की नहीं है। उसी प्रकार मनुष्य भी एक से हैं परन्तु जो परोपकारी हैं वे ही प्रशंसा के भाजन है। इस महात्मा के दर्शन से जिस प्रकार मेरे हृदय सरोवर में आनंद की तरंग उठी थी उसी प्रकार रात्रिभर सहवास रहने से मैं अमृत पुर से अभिषिक्त हो गई। आज मेरा बड़ा ही शुभ भाग्य का उदय हुआ है।''

इसके बाद राजकुमारी ने अपनी नीरोगता से प्रसन्न हो लज्जारी दृष्टि से हाथ जोड़कर पूछा–

"स्वामिन्! यद्यपि मैं समझती हूँ कि वह सब निरोगता आदि आपकी कृपा का ही फल है तो भी रात्रि में जो कुछ वृतांत हुआ हो उसे सुना मुझे कृतार्थ कीजिये।"

राजपुत्री का यह प्रश्न सुन कुमार ने रात्रि में जो कुछ हुआ था उसके विश्वास के वास्ते उसे अपने गहने की पिटारी खोलकर देखने को कहा। ज्योंहि पुत्री ने पिटारी खोली तो वह सर्प देखकर 'सांप, सांप कहकर दूर भागी। वह देखकर कुमार ने उसका भ्रम दूर किया और रात्रि में जो कुछ वृतांत हुआ था वह सब कह सुनाया।

जिनदत्त राजपुत्री को रात्रि का वृतांत सुना ही रहे थे कि इसी बीज में महल का अध्यक्ष वृतांत जानने के लिये आया और इनका समस्त समाचार जाकर उसने राजा से निवेदन कर दिया।

अध्यक्ष के मुख से राजा ने जब अपनी पुत्री की कुशल पा ली और जिनदत्त को भी जीता जागता सुन लिया तो वह शीघ्र ही हाथी पर चढ़कर कुछ आदमियों के साथ आया। राजा को अपने पास आता देख उसके सत्कार के लिये जिनदत्त उठे और राजा भी उन्हें सम्मान की दृष्टि से देख पास ही बैठ गया।

व्याधि के चले जाने से कुमारी की आभा एक अपूर्व ही तरह की हो गई थी। उसके चेहरे पर पहिले जो उदासी छाई रहती थी वह अब सर्वथा किनारा कर गई। उसके समस्त शरीर में दीप्ति छटकने लग गई थी। राजा ने ज्योंहि अपनी पुत्री को उस अवस्था में देखा उसके नेत्र देखते-देखते तृप्त न हो सके। कौतुक से पूर्ण हो उसने समस्त हाल जानने की इच्छा प्रकट की। और कुमारी ने शीघ्रतापूर्वक जो कुछ हाल कुमार से उसे मालूम हुआ था वह कह सुनाया।

कुमारी के मुख से समस्त वृतांत जानकर राजा को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसने आनंद से पुलकित हो इस प्रकार सोचा –

"अहो! संसार में भाग्य बड़ा प्रबल है। उसकी गति का कोई पार नहीं पा सकता। कहाँ का रहने वाला तो यह कुमार! और कहाँ की रहने वाली यह पुत्री? परन्तु इन दोनों का इसी तरह से संयोग होने वाला था। अहा! यह महात्मा धन्य है इसने मेरा बड़ा भारी उपकार किया है। जो मेरे कुल की कीर्ति में धब्बा लगाने वाली बात थी, जिससे मेरा राज्य कलंकित हो रहा था वह रोग सर्वथा इसने दूर कर दिया। इसका प्रत्यपुकार

सिवा इसके कुछ हो ही नहीं सकता कि मैं इसे अपनी पुत्री दूँ। नहीं! नहीं!! यह इसका प्रत्युपकार नहीं है। माता–पिता का कर्त्तव्य है कि वे गुणी को अपनी पुत्री दें। इससे अधिक गुणी मुझे कोई नहीं दिख रहा है। तब इसे न देकर दूसरे को पुत्री देना सर्वथा अयोग्य है इसके सिवा इस मेरी पुत्री की लालसा भी इस युवा के साथ विवाह करने की मालूम पड़ रही है देखो! जिस प्रकार अन्य लोगों की दृष्टि इस कुमार के मुख पर पड़ रही है। उससे एक भिन्न विकसित और ईवदाकुंचित इसकी दृष्टि ही इसके मुख की तरफ है। कुछ–कुछ सूक्ष्म पसीने की बूंद भी इसके गंडस्थल पर चमक रही है। गर्म–गर्म उच्छवासों से इसके अधरपल्लव भी म्लान हो रहे हैं। वाणी के बोलने में स्खलना खासी प्रतीत हो रही है। कंपन रोमांच भी इसके शरीर में उत्पन्न हो रहे हैं यह असावधनता भी अपनी प्रकट कर रही है जिससे कि कुमार में इसका मन है यह स्पष्ट मालूम हो रहा हैं इसके सिवा इसकी सखियों में भी इस बात की यथेष्ट चर्चा हो रही है इसलिये भी कुमार में इसके आसक्त होने की दृढ़ता मालूम पड़ती है। अस्तु! चाहे जो कुछ हो। जैसा मैंने अपने मन में विचारा था वैसा ही यह वर मेरी पुत्री के पुण्य से आकृष्ट हो यहाँ आ गया है। इसे अब कन्या दे देना ही उचित है। इस संबंध में मेरा इसके साथ संबंध भी दृढ़ हो जायेगा अथवा इसमें मेरा कुछ कर्त्तव्य ही नहीं है। विचित्र विचित्र पदार्थो के संयोग कराने वाले भाग्य ने ही संबंध रचा और वह ही इस विवाह विधि को भी पूरा करेगा क्योंकि सबका कर्ता धर्ता विधि ही है मनुष्य तो केवल उसमें साक्षी के बतौर पड़ जाता है।''

राजा मेघवाहन ने इस प्रकार उहापोहकर अपना मंतव्य स्थिर कर लिया और अपनी पुत्री का शुभ मुहूर्त में कुमार जिनदत्त के साथ विवाह कर गुणज्ञता का परिचय दिया।

कुमार जिनदत्त राजा मेघवान के अत्याग्रह से उसकी पुत्री श्रीमती का विवाह कर पंचेन्द्रियों के सुख भोगने लगे और वह पुत्री भी छाया के समान इनकी आज्ञानुवर्तिनी हो रहने लगी।

कुमार जिनदत्त जैन धर्म के प्रबल पंडित थे। इन्होंने समस्त शास्त्रों के साथ–साथ जैन शास्त्रों का भी खासा ज्ञान प्राप्त किया था और इन्हें उन पर श्रद्धान भी खूब अटल था। भला वे कैसे अपनी अर्द्धांगिनी को अपने से भिन्न धर्मावलंबिनी देख

सकते थे। इन्होंने उसे भी सर्वज्ञप्रणीत धर्म से संस्कारित करना चाहा इसलिये मिथ्यात्व के त्यागपूर्वक वे उसे वास्तविक धर्म का इस प्रकार उपदेश देने लगे –

''प्यारी! संसार में इस जीव का जितना अहित विपरीत पदार्थों के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण से होता है उतना किसी से भी नहीं होता इसलिये सबसे पहिले इसका त्यागना और वास्तविक पदार्थों का ज्ञान श्रद्धान आचरण करना ही श्रेयस्कर है। जो देव नहीं उन्हें देव मानना, जो गुरु के गुणों से रहित हैं उन्हें गुरु स्वीकार करना और जो तत्व नहीं है उन्हें तत्व मानना ही मिथ्यात्व है। जो लोग इस मिथ्यात्व से ग्रस्त रहते हैं। देवाधिदेव को देव न मान कुदेवादि को देव मानते हैं उन्हें इस लोक में ही नहीं किन्तु परलोक में ही दु:ख उठाने पड़ते हैं। वे मरकर सातों नरकों में असीम वेदनायें जो भोगते हैं वे तो भोगते ही हैं परन्तु समस्त संसार में जितने भी दु:ख हैं वे सब भी उन्हें भोगने पड़ते हैं।

समस्त दोषों से रहित, मुक्तिरूपी ललना से स्वयं वरण किये गये, लोक आलेक के समस्त पदार्थों के जानकार जो देव हैं वे ही सच्चे देव हैं उनसे भिन्न रागद्वेष आदि मल से मलिन कदापि देव नहीं हो सकते क्योंकि जो विरागी कृतकृत्य और सर्वज्ञ है वह ही आप्त हो सकता है अन्य नहीं। इसलिये तू देवताओं में सर्वश्रेष्ठ वीतरागी जिनेन्द्र भगवान को ही देव समझ। उनका ही मन–वचन–काय से सर्वथा श्रद्धान कर। वे ही चराचर समस्त जगत के ज्ञायक हैं छोटेसे लेकर बड़ों तक सब पर दया करने वाले हैं और सबके स्वामी हैं।''

उपर्युक्त गुणवाले भगवान द्वारा जो धर्म उपदेश गया है वह ही सुगाते प्रदान करने वाला है। उसी से जीवों के समस्त अभीष्टों की सिद्धि होती है। उस धर्म की प्रधान कारण दया हैं जिस प्रकार रसायन के योग से तांबा सोना हो जाता है और उससे समस्त इच्छायें पूरी हो निकलती हैं उसी प्रकार दया के साथ धारण किये गये धर्म के बराबर अमूल्य कोई वस्तु नहीं है। उससे मनचिन्ते कार्य पूरे हो जाते हैं। जो लोग देवताओं के लिये भी हिंसा करते हैं प्राणियों का वधकर उन्हें दु:ख पहुँचाते हैं वे नरक में प्राप्त होने योग्य दुष्कर्म करते हैं। जिस प्रकार विष मीठे पदार्थ के साथ खाया हुआ भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता प्राण लेकर ही मानता है उसी प्रकार देवताओं के लिये किया गया भी प्राणि वध रूप पाप पुण्य कभी नहीं हो सकता। उससे अवश्य दु:ख

प्राप्त होता है। इसलिये हे बाले! जो जिन-जिन कारणों से प्राणियों को दु:ख पहुँचाता है उनके बाह्य और अंतरंग प्राणों का नाश होता है। उन समस्त कारणों को तुझे छोड़ देना चाहिये। ऐसा करने से ही निर्दोष धर्म का उपार्जन होता है। संसार में प्राणियों को जो कुछ भी सुख मिलता है वह सब कुछ दयारूपी कल्पलता के ही कारण से होता है। जिस प्रकार विलायंद से आकाश नहीं नापा जा सकता उसी प्रकार इस दया के सहारे से होने वाले गुणों की गिनती नहीं हो सकती। प्राणियों के ऊपर दया करने से बढ़कर कोई दूसरा श्रेष्ठ धर्म नहीं है और यही बात जिनेन्द्र भगवान ने कही है। हम चाहे कितने भी अन्य धार्मिक अनुष्ठान करें, और क्रिया पाले परंतु यदि उन्हें हम दया से रहित हो करते हैं तो वे सब निष्फल हैं, उनसे पुण्य के बजाय पाप की ही प्राप्ति होती है। जिस प्रकार नाना गुण और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित भी कुलटा स्त्री एक शील गुण के अभाव में लोक में श्रेष्ठ नहीं गिनी जाती उसी प्रकार समस्त धार्मिक क्रिया-कलाप एक दया गुण के न होने से प्रशंसित नहीं होते।

जो महात्मा पुरुष इस संसार की वास्तविक दशा का परिज्ञान कर भव और भोगों से विरक्त हो गये हैं जिनकी शरीर की ढांचे में भी प्रीति नहीं रही है, जो तृण के समान अपनी समस्त लक्ष्मी को छोड़कर निर्ग्रथ व्रत धारण कर जीवन बिता रहे हैं, जो अपने प्राणों के नष्ट होने पर भी कभी अन्य जीवों की विराधना नहीं करते, जो मिथ्या वचनों का बोलना गर्ह्य समझते हैं, जिनके दूसरे की बिना दी हुई वस्तु ग्रहण करने की प्रतिज्ञा है, जो स्त्रियों के सहवास भोग से विरक्त हो चुके हैं, जो मुनि अवस्था के योग्य पिच्छी कमंडल से अतिरिक्त परिग्रह रखने के त्यागी हैं, जो लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र, लोष्ट कांचन और सुख-दु:ख में समान भाव रखने वाले हैं, जिनके सोने बैठने की पृथ्वी ही शय्या है जो वन आदि एकांत स्थान में रहते हैं और जिनके अध्ययन, अध्यापन और ध्यान करना ही कर्म है वे सांचे गुरु हैं। ऐसे गुरुओं के चरण कमल की रज स्पर्श करने से ही प्राणियों के पाप दूर भग जाते हैं और ऐसे ही जातरूप गुरुओं के हस्ताबलंबन से संसार समुद्र में डूबते हुये लोग पार पाते हैं। इसके सिवा जो लोग काम, क्रोध, मद, उन्माद, मोह से अंधे हैं, और इन्द्रिय में विषयों के भोगने में ही सर्वदा अनुरक्त रहते हैं, वे संसार सागर से जीवों का कभी उद्धार नहीं कर सकते। जिस प्रकार गुरु भारी वस्तु के सहारे कोई समुद्र नहीं पार कर सकता उसी प्रकार ऐसे विषयांध गुरुओं के वास्तविक गुरु (उपदेशक) न हो गुरु (नारी) होने से जीव संसार

समुद्र पार नहीं कर सकते।

सुंदरी! इस प्रकार देव धर्म और गुरुओं के स्वरूप का ज्ञान और श्रद्धान कर। इससे तुझे इस लोक और परलोक दोनों लोक में सुख की प्राप्ति होगी। यही इस प्रकार श्रद्धान करना ही सबसे पहिले इस जीव को कल्याणकारी है। इसके करने से ही समस्त नियम यम सार्थक होते हैं और वृद्धि को पाते हैं। इसके बिना कोई भी सुकर्म सुकर्म नहीं होता।

प्यारी! यह जो तुझे सुदेव, सुधर्म और सुगुरु का स्वरूप बतला श्रद्धान करना बतलाया है इसको सुदृढ़ करने के लिये मदिरा मांस और मधु न खाना चाहिये। इनके खाने से अनंत जीवों का संहार होता है। अगणित जीवों के उत्पत्ति के स्थानस्वरूप बड़, पीपल आदि पाँच उदंबरों का खाना भी अनुचित है। सूर्य के प्रकाश के न होने से अनेक जीवों का नाशक रात्रि भोजन करना ही सर्वथा अयोग्य है और अहिंसा आदि व्रतों का पालन भी आश्यक है। कृत कारित और अनुमोदित संकल्पी द्विन्द्रयादि जीवों की हिंसा का त्याग करना अहिंसाव्रत है। स्थूल मिथ्या वचनों का बोलना सत्यव्रत है। दूसरे की बिना दी हुई वस्तु ग्रहण न करना अचौर्यव्रत है। पराई स्त्री या परपुरुष का न सेवना ब्रह्मचर्यव्रत है।धन धान्य आदि परिग्रह का मान करना परिग्रह परिमाणव्रत है। समस्त कल्याणों का करने वाला पात्र में दान देना दान है। भोग उपभोग की वस्तुओं का मान करना भोगोपभोग परिमाणव्रत है। समस्त परिग्रहों में ममता को छोड़कर अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधुओं के गुण स्मरणपूर्वक आराधना विधि से प्राण छोड़ना संल्लेखना है। दिशाओं में जाने का नियम करना दिग्व्रत है। देशों में जाने का नियम करना देशव्रत है। बिना प्रयोजन पापोत्पादक क्रियाओं का न करना अनर्थ दंडव्रत है। प्रातः सांय और मध्यान्ह में विधि अनुसार पंचगुरुओं का स्मरण व अपनी आत्मा का ध्यान करना सामायिक है और इन्द्रियों की उग्रता को रोकने, धार्मिक क्रियाओं के करने के लिये जो आठ प्रहर बारह प्रहर आदि समय तक अन्न आदि का त्यागना है सो प्रोषधव्रत है।

इस प्रकार अहिंसा आदि बारह व्रतों का स्वरूप तुझे जिनेन्द्र भगवान के कथानुसार कहा है इन व्रतों का पालन तेरे लिये आवश्यक है। इसलिये अभी तो तू इसी प्रकार इन्हें धारण करले पश्चात् तुझे विशेष विधि अनुसार गुरु के समक्ष में इनसे दीक्षित

करा दूँगा।''

अपने पति जिनदत्त की हृदयग्राहिणी युक्तिसिद्ध वाणी को जब राजपुत्री ने सुना समझा तो वह अति आनंदित हुई। उसने शीघ्र ही समस्त व्रत धारण कर लिये और जैन धर्म की गाढ़ श्रद्धावाली हो गई।

इस प्रकार अपनी प्यारी को अपने समान श्रेष्ठ धर्म से संस्कृतकर जिनदत्त सांसारिक सुख भोग रहे थे कि इतने में ही इनके साथ का वणिक समुदाय अपने देश लौटने की तैयारी करने लगा। जब यह समाचार इन्हें मालूम हुआ तो इन्होंने अपने ससुर राजा मेघवाहन से भी जाने का विचार प्रकट किया और उसने पुत्री तथा उसके परिवार सहित इन्हें देश जाने की सम्मति प्रदान कर दी। जिस प्रकार हमारे चरितनायक अपने ससुर से वियुक्त होने लगे और जहाज पर सवार होने के लिये चलने लगे तो इनके ससुर ने इन्हें छत्तीस करोड़ सुवर्ण मुद्राओं के मूल्यवाले हार को भेंट में दे इनका सत्कार किया एवं अन्य राजकीय परिवार के मनुष्यों ने तथा अंतरुपुर की रानियों ने यथायोग्य भेंट आदि दे इनमें स्नेह और भक्ति प्रकट की।

जिनदत्त ने समुद्र के किनारे तक साथ आये हुये अपने स्नेहियों को विदा किया और मांगल्य विधि पूर्वक शुभ मुहूर्त में जहाज पर सवार हो अपने साथ व्यापारियों के साथ देश की तरफ रवाना हो गये।

इस प्रकार श्रीमद्-आचार्य गुणभद्रभदंतविरचित संस्कृत जिनदत्त चारित्र के भावानुवाद में चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।।4।।

***

पांचवां सर्ग

अनुकूल पवन होने से जहाज शीघ्रतापूर्वक देश की तरफ लौटने लगा। उसमें बैठे हुये लोग समुद्र की शोभा निरीक्षण करने लगे। मार्ग में कहीं उन्हीं वेत्रलतायें दिखने लगीं। कहीं मरगमच्छ दिखलाई पड़ने लगे। कहीं मछलियों के झुंड के झुंड दिखाई पड़ने लगे। कहीं अनेकांत मत के समान वह अनेक भंगों (नयी–तरंगों) से शोभित जान पड़ने लगा। कहीं कांता के स्तनतट के तुल्य मुक्ताहार से संयुक्त दिख पड़ने लगा कहीं कृपण के समान अपनी छिपी हुई अमूल्य माणिक्य व शंखादिक द्रव्यों को कुछ–कुछ दिखा कर फिर छिपाता हुआ मालूम होने लगा। कहीं नदी आदि के गिरने से भीषण शब्दों वाला दीख पड़ने लगा। कहीं कर्पूर आदि सुगंधित द्रव्यों के संसर्ग से सुगंधित पवन वाला जंचने लगा और कहीं किसी भिन्न प्रकार की ही छटा दिखलाने लगा।

इस प्रकार जहाज जब खूब जोरों से जा रहा था और सब लोग समुद्र की नाना छटाओं का आस्वादन लेते जा रहे थे कि इतने में सेठ समुद्रदत्त की दृष्टि रूप की खानिस्वरूप जिनदत्त की नवविवाहिता पत्नी श्रीमती पर जा पड़ी। वह उसके अप्रितम सौंदर्य को देख अवाक रह गया। वह उस पर ऐसा आसक्त हो गया कि खाने, सोने, जागने, उठने, बैठने की भी उसे सुध न रही। उसके संगम की तीव्र लालसा से एक–एक दिन भी उसको वर्षो सरीखा कटने लगा और वह कामाग्नि से संतृप्त हो सोचने लगा –

''आह! मैंने हजारों और लाखों सुंदर–सुंदर युवती स्त्रियाँ देखी हैं परन्तु देखने से तो वे मुझे किसी काम की ही नहीं मालूम पड़ती। यदि उनका इसके पैर के अंगूठे से भी मिलान करूँ तो भी वे बराबरी नहीं कर सकती। इस संसार में वही पुरुष धन्य है और वह ही वास्तव में प्रशंसा के योग्य भी है जिसको यह स्वयं अपने कटाक्षों से ताड़ित कर सुखी बनाती है। हाय! यह समस्त संसार के आनंद को प्रदान करने वाली परम सुंदरी रमणी मुझे कैसे मिले? यदि किसी तरह यह प्राप्त हो जाये तो मैं अपने को

धन्य समझूँ और तब ही मेरा जीवन भी सफल हो। अथवा इसके पति वीर श्रेष्ठ कुमार के जीवित रहने पर मेरा मनोरथ सिद्ध होना सर्वथा असंभव है इसलिये सबसे पहिले इसी (जिनदत्त) को मगरमच्छों से व्याकुल इस अथाह समुद्र में गिराकर मार डालूँ और तब नि:शंक हो इसके साथ सुख भोगूँ।''

सेठ ने इस प्रकार जब अपने मन में कामाग्नि बुझाकर शांत होने का दृढ़ निश्चय कर लिया तो जिनदत्त से भिन्न पुरुषों से गुप-चुप यह बात कह दी कि देखो! यदि समुद्र में कुछ बर्तन आदि गिर पड़े तो तुम लोग कोई भी उठाने का प्रयत्न न करना। उसे यों ही रहने देना।'' और स्वयं जानबूझ कर एक बड़ी भारी वस्तु उसमें पटक दी। वस्तु के गिरने मात्र से बड़ा भारी शब्द हुआ पर सेठ की आज्ञानुसार किसी ने जान बूझ कर भी उसे निकालने का प्रयत्न न किया। सब के सब चुपकी मारकर रह गये। जिनदत्त को समुद्रदत्त के गुप्त दुर्विचार का पता न था वे सचमुच किसी हानिकर वस्तु के गिर जाने के भय से उसे निकालने के लिये समुद्र में उतरने पर राजी हो गये। कुमार ज्यों ही उतर कर जल में पहुँचे त्यों ही दुष्ट समुद्रदत्त ने उनकी रस्सी काट दी और वे निरालंब हो समुद्र में ही रह गये एवं समुद्रदत्त जहाज भी शीघ्र-शीघ्र खेवा कर वहाँ से बहुत दूर ले गया।

अपने पति कुमार जिनदत्त के इस तरह असमय में वियुक्त हो और आँखों देखते अन्याय से पीड़ित होते देख बिचारी श्रीमती की विलक्षण दशा हो गई। वह जल के बिना मछली के समान अपने प्राणाधार के वियोग में दु:ख से छटपटाने लगी, रोते-रोते उसकी हिचकी भर आई, नेत्र लाल हो गये तन बदन की सुधि न रही और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो निश्चेष्ट हो गई। उसकी यह अवस्था और अपने मनोरथ की सिद्धि का सुअवसर देख दुरात्मा समुद्र सेठ शीघ्र ही उसके पास आया और अपने विष भरे शब्दों में उससे यों बोला -

''ये चंद्रवदनी! सुन्दरी! शोक मत कर। जिसके लिये तू शोक करती है वह समस्त सुख मैं तुझे देने के लिये तैयार हूँ। मैं तेरी समस्त आशायें पूरी करूँगा पर तू एक बार मेरी तरफ प्रसन्न हो दृष्टिपात कर। हे तन्वंगि! जब तेरी संपूर्ण आज्ञाओं को शिर पर उठाने वाला मैं तैयार हूँ और असंख्य धन तेरे हाथ में है तब तेरा खेद करना व्यर्थ है। हे शुभानने! बढ़िया-बढ़िया वस्त्र विचित्र-विचित्र गहने जो तुझे चाहिए उन्हें

पहिन और ओढ़, समस्त भृत्यों के ऊपर मालिकी कर एवं मेरे साथ निर्विघ्न सुख भोगते हुये अपने इस अमूल्य अनुपम यौवन को सार्थक बना। हे मुग्धे! मैंने तेरी इसी यौवन की बहार लूटने के लिये और तुझे सर्व प्रकार से सुखी बनाने के लिये ही छलपूर्वक जिनदत्त को समुद्र में गिरा दिया है। अब वह बिचारा कहाँ? तू नि:शंक हो सर्वप्रकार के इन्द्रिय सुख भोग। तेरा इसमें कोई भी कटंक नहीं हो सकता।''

पापी सेठ की इन बातों को सुनकर तो श्रीमती के और भी होश उड़ गये। वह अब तक तो अपने भाग्य को कोस कोसकर ही रोती थी पर जब उसे जहाज के मालिक सेठ की ही यह करतूत मालूम पड़ी और जिस पर भी उसके अपने साथ व्यभिचार करने के भाव मालूम हुये तो वह और भी विह्बंल हो गई। उसने अपने सिर को पटकते-पटकते सोचा – ''हाय! इस सेठ को अब तक मैं अपने पिता के तुल्य समझती पर वह ही बैरी निकला। इसी कामांध ने अपने व्यभिचार के पोषणार्थ मेरे पतिदेव को समुद्र में गिरा दिया है और फिर अब पाप का प्रस्ताव कर घाव में नमक छिड़क रहा है। हाँ! भगवन्! यह कैसा मूढ़ है कृत्य-अकृत्य के विचार से सर्वथा रहित है जो अल्प क्षण स्थाय विषय सुख के लिये अपने नित्य सुखदायक धर्म को तिलांजलि देने पर तैयार हो गया है। अरे! मेरे पति चंद्र को निगल कर मेरी आँखों से ओझल करने वाले इस दुष्ट पिशाच का मैं मुख ही क्यों देख रही हूँ। हा! अथवा इसमें इसका अपराध ही क्या है? मैं ही पापात्मा सर्वथा अपराधिनी हूँ। मेरे रूप की सुंदरता को देखकर ही इसने ऐसा किया है। यदि मैं कुरूप होती तो क्यों ऐसा यह करता इसलिये अपने दांतों से जीभ काटकर मर जाना अच्छा! अथवा जल में कूद कर प्राण दे देना अच्छा, या तलवार से ही अपना घात कर लेना अच्छा। अरे! नहीं!!! मैं किसी मूढ़ हो गई हूँ जो धर्मशास्त्रियों द्वारा निषिद्ध आत्मघात करने की मन में ठान रही हूँ। हाँ! आत्मघात करने के इस विचार को धिक्कार हो। क्योंकि आत्मघातियों को इस भव में जो दु:ख है वह तो भोगना पड़ता ही है परभव में भी असह्य कष्ट का सामना करना पड़ता है और जो धर्म कर्म मैं दृढ़ हो शील पालन करते हैं इनको इस भव परभव दोनों में सुख ही सुख मिलता है। उनकी सर्वत्र इच्छायें पूरी होती हैं। सीता अंजना आदि ने कैसा दु:ख भोगा पर वे अपने व्रतों में दृढ़ रही तो आखिर कैसा सुख पाया। इसलिये मेरा शीलव्रत में दृढ़ रहने का पक्का निश्चय है पर कामार्त्त पापी इस तरह न मानेगा इसका किसी न किसी तरह वंचन करके अपना काम निकालना चाहिये। पार पहुँचकर यदि पतिदेव का कुछ

पता लगेगा तो ठीक, नहीं तो फिर तपोवन ही शरण है।'' ऐसा सोच समझकर सुंदरी ने सेठ समुद्र से उत्तर में कहा –

''आर्य! आपका कहना अयुक्त है। आपके पुत्र ने मुझे आपको अपना पितातुल्य बतलाया था इसलिये आप मेरे पिता के सदृश्य पूज्य ससुर लगते हैं आपके साथ रमण करने की मुझे इच्छा न होकर उल्टी घृणा ही होती है। जो लोग श्रेष्ठ होते हैं वे अपने प्राणों का वियोग उपस्थित हो जाने पर भी स्वीकृत वचनों से पीछे नहीं हटते हैं, वे समुद्र के समान सर्वथा वचन मर्यादा का ही पालन करते हैं। अपने निर्मल श्रेष्ठ कुल में हिताहित विवेकी पुरुष कभी भी परस्त्रीसंग सरीखे पाप से जायमान कलंक से दूषण नहीं लगाते – वे सर्वदा उत्तमोत्तम कार्यो के करने से अपनी निर्मल कीर्ति ही विस्तारते हैं। इसके सिवा अपनी उच्च कुल में जन्म पाने की यादकर भी मेरा मन ऐसे निकृष्ट कार्य करने में अग्रसर नहीं होता है।''

श्रीमती के उपर्युक्त साहस भरे हित वचनों को सुनकर भी मूढ़ सेठ का हृदय न पिघला। उसके उन वचनों से शांति न हो कामाग्नि दाह प्रबल ही हो निकली। वह और भी ढीठ होकर बोला –

''ये ! मनस्विनी! तू जो कुछ भी इस समय कह रही है वह सब सच है उसे मैं भी रत्तीभर जानता हूँ पर तुझे देखकर मुझे काम ने इस तरह बेहोश कर दिया है कि मेरे लज्जा विवेक आदि समस्त गुण नष्ट हो गये हैं। मैं कदंर्परूपी सर्प के विष से ऐसा मूर्छित हो गया हूँ कि सिवा तेरे सुरतरूपी अमृत का पान किये चंगा हो ही नहीं सकता। तूने तो इस परपुरुष सेवन को अकार्य बतलाया वह कथंचित ठीक है पर सर्वथा अकार्य ही नहीं है। ऐसे सैकड़ों और हजारों दृष्टांत श्रुति और पुराणों में मिलते हैं जो एक पुरुष के सिवा अन्य कई पुरुषों से स्त्री के भोग करने पर भी वह सती ही बनी रही है उसका शीलव्रत दूषित नहीं हुआ। देख! द्रोपदी ने अपने पिता पुत्र तुल्य युधिष्ठिर नकुल आदि अपने पति अर्जुन के सिवा शेष चारों पांडवों से भी यथेष्ट काम क्रीड़ाये की पर उसे कोई व्यभिचारिणी नहीं कहता। सब लोग सती साध्वी कह कर ही पुकारते हैं। समस्त स्मृति और पुराणों के वेत्ता, देवेंद्र नरेन्द्रों द्वारा वंदनीय भारद्वाज मुनि की क्या तुझे कथा नहीं मालूम है वे इतने भारी विद्वान् होने पर भी अपनी भावज के साथ संभोग करने पर सन्नद्ध हुये थे। यदि परस्त्री संसर्ग पाप ही होता तो इतने बड़े शात्रज उस

कुकर्म में कैसे प्रविष्ट होते। इसके सिवा यह शास्त्र का भी वचन है कि जो पुरुष व स्त्री स्वयं इच्छाकर आये हुये पुरुष व स्त्री के साथ संभोग नहीं करता उसको अवश्य ही ब्रह्महत्या लगती है इसें कोई भी संदेह नहीं है। इसलिये हे तन्वि! समस्त भय छोड़ मेरी इच्छा पूर्णकर मुझे सुखी बना।''

सेठ की इस प्रकार कुयुक्ति और कुत्सिततापरिपूर्ण वचन प्रणाली को सुनकर श्रीमती बोली –

''महाबुद्धि के धारक हे ससुर! आप जो कुछ कह गये हैं वह आपको शोभा नहीं देता आपने साक्षात् व्यभिचार को जो द्रोपदी आदि के दृष्टांत देकर मुझे शील समझाने का प्रयत्न किया है वह ठीक नहीं। क्योंकि एक तो सब कुछ होने पर भी लोक में ससुर और बहु का संगम निदंनीय है। प्रशंसनीय नहीं। दूसरे पृथ्वी तल को अपने शील की पवित्रता से पवित्र करने वाली द्रौपदी के विषय में जो बात कही वह सर्वथा अयोग्य है। वास्तव में उसके एक अर्जुन के सिवा कोई दूसरा पति न था। युधिष्ठिर आदि चारों भाई पिता पुत्र के समान थे। लोगों ने जो किवदंती उसके पंचभर्तारी होने की उड़ा रखी है वह सर्वथा कल्पित मिथ्या है। किसी विषयांध की गढ़ी हुई है। भारद्वाज का जो दृष्टांत दिया वह भी ठीक नहीं जंचता। क्योंकि आप सरीखे विषयांध पापियों का इस पृथ्वी पर से कभी लोप नहीं हुआ। पहिले भी वे विद्यमान ही थे और आपने स्वयं आये हुये पुरुष व स्त्री के न भोगने से ब्रह्महत्या के समान पाप होने का भय दिखलाने वाला शास्त्रवाक्य सुनाया वह भी युक्त नहीं है क्योंकि उसके ठीक होने पर तो व्यभिचार कोई पाप ही नहीं ठहरता और जब पाप नहीं तब उसी शास्त्र में व्यभिचारियों को शिरच्छेद आदि दिये जाने वाले दंडों का विधान ही अयुक्त ठहरता है। जो सात्विक प्रकृतिवाले धर्मात्मा पुरुष होते हैं। वे एक ही तो क्या बात हजारों कष्टों के पड़ने पर भी कभी अपने से अयोग्य कृत्य में प्रवृत्त नहीं होते। चाहे कितने भी कष्ट आ पड़े और कैसी भी भूख लग रही हो पर सिंह कभी अपने आहार के अयोग्य घास फूंस नहीं खा सकता। इसी प्रकार काम की तीव्र बाधा होने पर भी धर्मात्माओं के मन कभी कुकर्म करने में अग्रसर नहीं होते। जिन पुरुषों के कमजोर दीन हृदय पुंश्चली स्त्रियों के कटाक्ष बाणों से विद्ध हो खंड–खंड हो जाते हैं अपने सुकृत्य को छोड़ उनकी ही आज्ञा में चलने लगते हैं तो जिस प्रकार दूसरी स्त्री से सेवित पुरुष

की पहिली स्त्री ईर्ष्या की दृष्टि से देख निकलती है उसी प्रकार उन पुरुषों को भी इहलोक और परलोक दोनों की संपत्तियाँ बुरी निगाह से देखने लगती हैं वे उनके पास तनिक भी नहीं फटकती। इसके विपरीत परस्त्रियों द्वारा अपने भ्रूधनुष पर चढ़ाकर फेंके गये कटाक्षरूपी बाणों से जिनका शीलरूपी दृढ़ कवच भिन्न नहीं होता। उनके लिये समस्त संसार अपना मस्तक नमाता है उन्हें दोनो लोक की संपत्तियाँ स्वयं आ प्राप्त हो जाती हैं। जिस कार्य के करने से अपने कुल में कलंक लगता है, निर्मल यश दूषित होता है उस साक्षात् दु:ख देने वाले कुकर्म को ऐसा कौन बुद्धिमान पुरुष है जो सुख प्राप्त करने की इच्छा से करता है। जो सज्जन पुरुष हैं वे बहुत से विवाह अपनी संतान की बढ़वारी के लिये करते हैं। पुरुष जो मूर्ख हैं वे उन्हीं में कामाग्नि की शांति के लिये आसक्त हो नाना पाप उपार्जन करते हैं। और अंत में नरक में पड़ नाना दु:ख भोगते हैं। जिस प्रकार पड़ी हुई मेघ की धारा से हत हो वृषभ नीचे को गर्दन कर चले जाते हैं उसी प्रकार सज्जन धर्मात्मा पुरुष भी परस्त्रियों को सामने पड़ती देख नीचे को निगाह कर एक तरफ से चले जाते हैं। अपने को देखकर काम के बाणों से जर्जरित हो स्वयं समीप में आई हुई भी परस्त्रियों को देखकर जो काम से पीड़ित नहीं होते उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से ही देखते हैं वे वास्तव में महाव्रती हैं। उनके महाव्रत है उससे ब्रह्महत्या के समान पाप नहीं लगता बल्कि उनके सेवन से ही उल्टा पाप होता है। जो महात्मा दूसरों की स्त्रियों को माँ बहिन बेटी के समान समझता और धन को मिट्टी के ढेले के समान जानता है उसी का संसार में निर्मल यश विस्तृत होता है। एक बार पाताल में कोसों दूरी की जड़ को धारण करने वाला सुमेरु पर्वत हिल सकता है, समुद्र अपनी मर्यादा को भंग कर सकता है। पर पवित्र सतियों का दृढ़ गंभीर मन कभी भी दुश्चरित्रों से चल विचल नही हो सकता। प्राण जायें तो जाय पर सतियाँ अपने शील में कभी भी दूषण नहीं लगा सकती। इसलिये मैं भी कामाग्नि की डाह बुझाने पर राजी नहीं। देखो मेरी तो क्या बात? मैं तो सैनी पंचेन्द्रिय हित अहित की जानने वाली मानुषी हूँ पर जो सामान्य अत्यल्प ज्ञान की धारण करने वाली एकेन्द्री मनरहित पद्मिनी वनस्पति है वह भी अपने पति सूर्यदेव के अंतर्हित होने पर सर्वदा सुंदर और शीतल चंद्रमा के रहने पर भी उसकी ओर झांककर भी नहीं देखती। शेष नाग के सिर पर की मणि चाहें कोई छूले और सिंह के गर्दन के बाल चाहे कोई अपनी मुट्ठी में भर ले पर सतियों के पवित्र शरीर को कोई भी अपवित्र

मनुष्य अपने शरीर से नहीं छू सकता। इसलिये हे हिताहित के विचारने में प्रबल बुद्धि के धारक! तुम अपने मन को सर्वथा शुद्ध बनाओ। अब तक जो अशुद्ध भावों में गंदा हृदय हो रहा है उसे उन भावों को निकाल कर पवित्र कर डालो।''

श्रीमती के इस प्रकार पवित्र उपदेश के वाक्यों को सुनकर सेठ क्रोध से आगबबूला होकर बोला –

''अरी! मूर्ख! तुझे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तू बड़े ही कठोर हृदय की अर्द्धदग्धा पंडिता है। अरे! तुझे ब्रह्मा ने वास्तव में मुझे संताप देने के लिये ही सुंदरी बनाया है। तू ऊपर से ही भोली भाली, लावण्य के चाकचिक्य से दैदीप्यमान, मुख की कांति से पूर्णिमा के चांद को भी लजाने वाली है। पर भीतर से बड़ी ही दुष्ट विषबेल के समान है। हे दुर्युद्धे! तू जैसी ऊपर है वैसी ही भीतर से क्यों नहीं हो जाती। इस समय मैं तुझसे अन्य कुछ नहीं चाहता। केवल इतना ही कहता हूँ कि मुझसे अपने संगम की कुछ दिनों के बाद की प्रतिज्ञा कर ले जिससे फिलहाल मैं आशा में ही दिन बिताऊँ और तेरे मुख की कांति को आशा भरे नेत्रों से पी पीकर अपना जीवन कायम रखूँ। अन्यथा यदि तू ऐसा न करेगी तो मैं तेरे सामने इसी समय तेरे प्रेम में आसक्त होने के कारण निराशा से प्राण छोड़ दूँगा और द्विज देवों के भक्त समस्त जनों के प्रिय मेरे इस तरह मर जाने से पाप तेरे मत्थे पर पड़ेगा।''

राजपुत्री श्रीमती ने जब इस प्रकार सेठ का आग्रह समझा और वर्तमान में हानि के बदले अपना लाभ ही देखा तो उसने अपने मन के भावों को मन में ही छिपाकर सेठ के अभिप्रायानुसार ही यों कहा –

''अच्छा! यदि आपका अधिक आग्रह ही है और मनोरथ की सिद्धि बिना हुये अपने प्राण तक छोड़ने को तैयार हैं तो कृपाकर छः महिने तक ठहर जाईये। मैं जब तक अपने पति देव के नाम से ही समस्त कृत्य करूँगी फिर उसे बाद आप जैसा कहेंगे करने लग जाऊँगी। क्योंकि बिना पति के मैं जन्म बिना नहीं सकती और आपसे श्रेष्ठ पति मिलना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव भी है। आप समस्त युक्त अयुक्त के विचारने में चतुर हैं विवेकी वृद्ध हैं आप जो कुछ कहते हैं वह सब ठीक है उसके करने से मेरी कुछ क्षति नहीं हो सकती।''

सेठ समुद्र श्रीमती के इस प्रकार अपने अनुकूल वचन सुनकर लंबी सांस खींचकर बोला –''सुंदरी! मैं इसे स्वीकार करता हूँ पर छः महीने बहुत होते हैं। अच्छा! जब तूने मेरे अभिप्राय को सिंद्ध करना स्वीकार ही कर लिया है और उससे काम ने मुझे संताप देना कर दिया है तो मैं तब तक किसी न किसी तरह अवश्य ही ठहरूँगा।''

इस प्रकार उन सेठ और राजपुत्री श्रीमती में जब समझौता हो गया तो वे उस समय किसी प्रकार शांत हो गये। इसके कुछ ही दिनों के बाद जहाज घाट पर आ गया। और यह देखकर सब लोग मन में खुश होने लगे।

श्रीमती ने यद्यपि वचन से छः महिने के बाद सेठ की पत्नी होना स्वीकार कर लिया था पर मन में उसे उससे बहुत घृणा थी। वह वैसा करना महानीच कार्य समझती थी इसलिये सेठ के पंजे से किसी प्रकार निकलने की इच्छाकर उसने अपने भृत्यों से कहा आज मुझे बहुत प्यास लग रही है इसलिये सेठ से कहना – कि आज नदी के किनारे वृक्षों की छाया में विश्राम करें। श्रीमती की यह अभिलाषा सुन सेठ ने उसकी रक्षा में नौकरों को प्रबंध कर वहीं रहना स्वीकार कर लिया। और स्वयं भेंट लेकर राजा की सेवा में चल दिया। सेठ के नगर में चले जाने पर श्रीमती की रक्षा में नियुक्त पुरुष तो नौकाओं से क्रीड़ा करने में लग गये और इस अवसर को अच्छा समझ वह स्नान के बहाने अपने खास–खास भृत्यों को लेकर चंपा नगरी में आये हुये एक वणिकों के झुण्ड में जा पहुँची एवं अपना समस्त पूर्व समाचार उनको सुना आश्रयदान चाहने लगी। श्रीमती के वृतांत को सुनकर उन वैश्यों के प्रधान ने उसे आश्वासन दिया और पुत्री के समान उसे समझकर निशंक हो अपने साथ चलने को कहा। क्रम–क्रम से चलकर वैश्यों का समुदाय और श्रीमती दोनों चंपानगरी के बाहर उद्यान में पहुँचे और वहाँ श्री जैनमंदिर को देखकर श्रीमती उसमें बड़े ही आनंद से जय जय शब्दों को करती हुई प्रविष्ट हो गई।

जिनदत्त की प्रथम स्त्री विमलमति जिसको वे छोड़कर धन उपार्जन करने के लिये परदेश गये थे वह उनके वियोग में पूर्व पाप कर्म की शांति के लिये उसी मंदिर में धर्मध्यान किया करती थी। उसने ज्योंही इस श्रीमती को अपने समस्त परिवार से वेष्टित उदासीन देखा तो जिनेन्द्र भगवान की स्तुति के बाद सामायिकादि कर चुकने

पर कुशल क्षेम का प्रश्न किया। जिसके उत्तर में बहुत कुछ समझाने पर दु:ख और शोक के साथ श्रीमती ने कहा –

''बहिन! मेरी कथा बड़ी ही दु:खदायिनी है। स्नेह से पीड़ित प्राणियों को इस संसार में पग–पग पर दु:ख उठाने पड़ते है। वज्र की सांकलों से बंधे हुये प्राणियों का जन्म–जन्म में छूटना न होकर बंधना ही होता चला जाता है। इस संसार में जीव को सर्वदा चारों गतियों में भ्रमण कराने वाले उनके शुभाशुभ कर्म ही हैं पर वे भी इसी स्नेह के कारण ही उत्पन्न होते हैं और उस स्नेह के उत्पन्न करने में भी कारण इन्द्रिय विषय हैं। यदि विषय भोगने की इच्छा का सर्वथा नाश हो जाये तो स्नेह और द्वेष ही न रहें इसलिये जो भोगों से सर्वदा निस्पृह हैं वे तो अनंत मोक्ष के नित्य सुख भोगते हैं और जो हम सरीखे विषय लोलुपी नराधम हैं वे शहद लपेटी छूरी के समान प्रथम ही अच्छे लगने वाले इंद्रियविषयों को ही चाटते–चाटते इस अनंत दु:खम समय में दु:ख उठाते फिरते हैं।

इस प्रकार अत्यंत शोकपरिपूर्ण वचनों में अपने वृतांत की भूमिका को कहती हुई श्रीमती को विमलामती बीच में ही रोककर धैर्य बंधाने के लिये कहने लगी।

''प्यारी बहिन! अधिक शोक करने की आवश्यकता नहीं है जो जैसा जिसके भाग्य में सुख–दु:ख होना होता है अवश्य ही होकर मानता है उसके विपरीत यदि इंद्र करना चाहे तो नहीं कर सकता। स्नेह और द्वेष ये दोनों भी पूर्वकर्म के अनुसार ही होते हैं और चिंता करने से रात दिन उसी के कारण ही बढ़ते चलते हैं। इसी कर्म के कारण ही यह जीव क्षणभर में सुखी, क्षणभर में दु:खी, क्षणभर में दास, क्षणभर में स्वामी और क्षणभर में ईष्ट जनों के वियोग, अनिष्ट जनों के संयोग से संयुक्त हो जाता है।

सखि! जिस संसार में रूप, लावण्य और सौभाग्य के भंग हो जाने में में कुछ भी देरी नहीं लगती उसमें सुख कैसे हो सकता है? हर्ष, विषाद आदि परस्पर विरुद्ध भावों के उदय होने से जहां पलक मारने के समान भी देरी नहीं लगती वहाँ प्रेम की स्थिरता कहाँ रह सकती है? हे सुलोचने! हम स्त्रियों का जन्म इस संसार में बड़ा ही निकृष्ट है जो सबसे अधिक प्यार करने वाले माँ–बाप भी हमें दूसरों के लिये ही पाल पोसकर बड़ा करते हैं। अनर्थकारी यौवन के प्रारंभ होने पर कामजन्य सुखों से

लिप्त हो हम सर्वथा पति के जीवनाधार ही हो जाती हैं और उस (पति) के वियुक्त हो जाने पर पाले के पड़ने से कमलिनी के समान मानसिक संतापों से दग्ध हो सूखने लगती हैं। इसके सर्वथा भंग हो जाने से अंतरंग में सार शून्य हुई बाहर से ही केवल मनोहर लगने वाली, अलंकारों से सर्वथा रहित हम लोगों के चरित्र को चाहे यह निर्मल ही क्यों न हो तो भी शंका से लोग दूषित ही समझने लगते हैं। जिस प्रकार कुकवियों की कविता ओज प्रसाद आदि काव्य के गुणों से सर्वथा रहित होती है, कष्ट पूर्वक बनायी जाती है और अपशब्दों से भरी रहती है। इसलिये इसकी कोई कदर नहीं करता उसी प्रकार हम पतिविरहिता (विधवा) होने से कष्टपूर्वक तो जीवन व्यतीत करती हैं, प्रसन्नता हास्य आदि से सर्वथा शून्य रहती हैं और अपशब्दों से ही पुकारी जाती हैं। अत: इस निदंनीय स्त्री पर्याय का अंत करने के लिये समस्त संसार की संपत्तियों को प्रदान करने वाले जिनेन्द्र भगवान के शासन में ही मन और भक्ति लगाना ठीक है। उसी के सेवन से हमारा कल्याण होगा। सुख और दु:ख जब इस संसार में समस्त जीवों को समान ही है किसी को चिरस्थायी सुखी नहीं तब वह हमें ही कहाँ से मिल सकता है। इसलिये पूर्व उपार्जित कर्म के फल को भोगने के लिये हमें सर्वदा तैयार रहना चाहिये। अपने मन को स्थिर रख सर्वदा कर्म के फलों को भोगना चाहिये।''

इस प्रकार विस्तार पूर्वक विमलामति से समझाई गई उस श्रीमती ने अपना और अपने प्रति का समस्त वृतांत उससे कह डाला। उसे सुनकर विमलामति ने जब उसके पति की रूप चेष्टा आदि पूछी तो वे भी उसने कह दी जिसे सुनकर विमलामति के मन में एक अद्‌भुत तरंग उठी उसने सोचा – 'हो, न हो, यह मेरा पति जिनदत्त ही तो नहीं है। इसकी बतलाई सब चेष्टायें उनसे मिलती जुलती ही मालूम पड़ती हैं। अथवा इस दुष्ट संकल्प को धिक्कार हो। मन से बिना निश्चय किये इस प्रकार के भाव कराना सर्वथा अयोग्य है। दुनिया में एक तरह के अनेक मनुष्य होते हैं बहुत से रूप और चेष्टाओं में समान होते हैं। पर रहते भिन्न–भिन्न हैं। यह भी (इसका पति) कोई मेरे पति से भिन्न ही होगा।'' इसके बाद विमलामति ने अपना समस्त वृतांत भी उसे कह सुनाया जिससे समान दु:खवाली वे दोनों बहिन के समान परस्पर प्रेमवाली हो नित्य स्वाध्याय व्रत आदि में तत्पर रहने लगी और ठीक–ठीक समस्त पति के वृतांत ज्ञात होने पर यदि उनका संयोग न हुआ तो मोह का मंथन करने वाला जिनेन्द्र का तप तपेंगी ऐसा दृढ़ विचार कर रहने लगी।

इसी बीच में सज्जनों का प्रेमी विमलामति का पिता सेठ विमल श्रीमती के आगमन का समाचार सुन वहाँ आया और जिनेन्द्र भगवान की भक्ति पूजाकर चुकने के बाद उनके समीप पहुँचा। पिता को समीप आया देख उन दोनों ने प्रणाम किया। उसके बाद श्रीमती की कुशल क्षेम पूछी। उसके उत्तर में श्रीमती ने अपनी सखी विमलामति की तरफ नीची निगाह कर वृतांत कहने की इच्छा प्रकट की। जिससे विमलामति ने उसका समस्त वृतांत अपने पिता को कह सुनाया।

श्रीमती का वृतांत सुनकर सेठ विमल को बड़ा दु:ख हुआ उसने समस्त लोक को आनंद करने वाले उसके सौंदर्य और यौवन को पति के वियोग से कलंकित करने वाले देव को बार-बार धिक्कारा और अमृत में विष मिला देने वाले मूर्ख भाग्य की खूब ही निंदा की। अंत में असाता वेदनीय कर्म की कृपा से संसार में समस्त प्राणी दु:ख भोगते हैं। यह जानकर श्रीमती से कहा -

"प्यारी पुत्री! शोक छोड़कर यहाँ ही अपनी इस बहिन के साथ रह और धर्म में मन लगा। धर्म के प्रभाव से तुम दोनों का शीघ्र ही असाता वेदनीय नष्ट हो जायेगा और तब तुम्हें अवश्य ही अभीष्ट सुख प्राप्त होगा। तू यह निश्चय समझ। तेरा और इस विमलमती दोनों का एक ही पति है किसी न किसी शुभ कारण से तुम दोनों के मनोरथ सफल हुये जो समान आकृतिवाली तुम दोनों की भी संगति हो गई है। तेरे पति का जब तक पूरा-पूरा समाचार न मिले तब तक इसी जगह रह और धर्म ध्यान से काल बिता। ऐसा करने से ही कल्याण होगा।"

इस प्रकार अच्छी तरह समझा और धैर्य बंधाकर सेठ विमल तो अपने घर चले गये और वे दोनों परस्पर में प्रीति युक्त हो वहाँ ही जिनेन्द्र की पूजा, पात्र के दान, जैन शास्त्र के स्वाध्याय और मुक्तावली आदि व्रतों के आचरणों से काम की इच्छारहित हो दिन ब्रिताने लगी एवं पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई कीर्ति और लक्ष्मी के समान शोभित होने लगी।

इस प्रकार श्रीमद्-आचार्य गुणभद्रभदंतविरचित संस्कृत जिनदत्त चारित्र के भावानुवाद में पांचवा सर्ग समाप्त हुआ।।5।।

***

छठवां सर्ग

जिस प्रकार हमारे चरित्रनायक ने गिरी हुई वस्तु को उठाने के लिये समुद्र में डुबकी लगाई और कार्य सिद्ध हो जाने पर ऊपर उछाल मारी तो अपना आलंबन भूत रस्सा कटा पाया एवं जहाज का निशान तक उस जगह न देखा। यह देख वे सेठ की चालाकी समझ गये और मन में सोचकर कि सज्जनों का मन सुख में तो मक्खन के समान कोमल हो जाता है और विपत्तियाँ दु:ख में वह पत्थर से भी अधिक कठोर हो जाता है। अपनी भुजाओं से समुद्र में तैरना प्रारंभ कर दिया हाथों में तैरते-तैरते ये कुछ दूर ही पहुँचे थे कि इतने में इन्हें एक काठ का टुकड़ा मिल गया। उसे पाकर ये बड़े ही प्रसन्न हुये। उसे मित्र के समान ये कभी तो पैरों से आलिंगन कर तैरने लगे, कभी पीठ से सहारा ले जल में बहने लगे और कभी उदर तथा कटिका आश्रय ले नि:शंक हो आगे बढ़ने लगे।

इस प्रकार विकट चंचल गंभीर समुद्र में हमारे चरित्रनायक तैरते चले जाते थे कि मार्ग में सुंदर आकार के धारक दो पुरुष आकाश में जाते हुये इन्हें मिले। उनमें से एक ने इन्हें लक्ष्यकर ताड़नापूर्वक कहा -

"रे! रे!! तुच्छ मनुष्य!!! तू यहाँ कहाँ तैर रहा है! क्या तुझे नहीं मालूम? इस जगह हम लोग रहते हैं। हमारे स्थान पर हमारी बिना आज्ञा के इन्द्र भी चाहे तो नहीं क्रीड़ा कर सकता फिर तुझ सरीखे क्षुद्र शक्ति के धारक मनुष्य की तो बात ही क्या है? अथवा इसमें तेरा कोई अपराध नहीं है तेरी बदनसीबी ही तुझे यहाँ ले आई और इसलिये किसी ठगिया जाल साज की बातों में आकर तू हमारे निवास को बिना जाने ही अपने पैरों से गंदा कर रहा है।"

आकाशगामी पुरुष की ज्योंही तर्जनाभरी वाणी जिनदत्त ने सुनी उन्होंने शीघ्र ही अपना दक्षिण हाथ तो कमर में लिपटी हुई तलवार पर रख लिया और बायें हाथ

से फलक (काष्ठ खंड) को थमाकर क्रोध के तीव्र आवेश में आकर नि:शंक हो कहा –

''ऐ व्यर्थ की दूर से ही बातें बनाने वाले! घमंड में चूर पुरुष! क्यों गीदड़ भभकी दिखा रहा है। यदि तुझमें कुछ भी सामर्थ्य है तो शीघ्र ही समीप आ! फिर देख तू कैसा मजा चखता है। आकाश में चलने फिरने की केवल सामर्थ्य रख लेने से ही अपने को जगत में श्रेष्ठ मत समझ। आकाश में तुझ सरीखे भय से व्याकुल चलने वाले तो पंछी भी होते हैं। निरंतर इन्द्रिय विषयों में लिप्त रहने वाले इन्द्र आदि शायद तुझ सरीखे क्षुद्रों की डरावनी में आ जाते होंगे। परन्तु मैं मल्ल निर्भय मनुष्य हूँ कभी भी तुझ सरीखों की परवाह नहीं कर सकता। यदि कुछ शक्ति रखता हो तो आ और नि:शंक हो अस्त्र छोड़। क्या तुझे नहीं मालूम? सिंह चाहे तो कितने भी प्रमोद और अनवाधता के डंग से सोता हो उसकी गर्दन के बाल कभी भी तुच्छ डरपोक हिरण नहीं उखाड़ सकते।''

अपने वाक्यों के उत्तर में इस प्रकार दूने क्रोध और तिरस्कार के भरे जिनदत्त के वाक्यों को सुनकर उस गगनगामी पुरुष ने नम्र हो कहा –

''हे महा सत्व के धारक निर्भय वीर पुरुष! आप क्रोध छोड़कर प्रसन्न होइये। मैंने आपकी परीक्षा ली थी उसमें जो कटु वाक्य निकल गये उन्हें क्षमा कीजिये और मेरी प्रार्थना को सुनिये जैसे – विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रथनपुर नाम का एक विद्याधरों का नगर है। उसमें स्वामी अशोक श्री के विजया महारानी के गर्भ से उत्पन्न श्रृंगारमती नाम की एक श्रेष्ठ सुंदर कन्या है। जिस समय वह विवाह के योग्य समझी गई और पिता ने उसके लिये विद्याधर कुमार तलाश किया तो उसने विद्याधर मात्र के साथ विवाह करने की मनाई कर दी। उसके बाद ज्योतिषी से पूछने पर मालूम हुआ कि जो समुद्र में अपनी भुजाओं से तैरता हुआ मिलेगा वह ही इसका पति होगा। ज्योतिषी के वचनानुसार अशोक श्री महाराज ने तब से हम दोनों को यहाँ समुद्र में तैरने वाले पुरुष को देखने के लिये नियुक्त कर दिया है। हम लोगों का नाम वायुवेग और महावेग है। आज हमारा मनोरथ सफल हुआ जो पुण्यशाली आपके दर्शन हो गये।''

इस प्रकार विद्याधर कुमारों ने अपना वृतांत जिनदत्त को समुद्र बाहर निकाला और तट पर स्नान करा वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित कर विमान में बिठा अपने नगर

ले गये।

रथनपुर नगर के अधिपति अशोक श्री ने जिस समय कुमार जिनदत्त के स्वरूप को देखा उस समय वह अवाक् रह गया। उसने हर्ष से रोमांचित गात्र हो सोचा–अहा! यह बड़ा ही सुंदर युवा है। कहीं यह साक्षात् कामदेव तो नहीं आ गया। अन्यथा इस प्रकार की रूप और लावण्य की महिमा अन्यत्र कहाँ हो सकती है। अथवा संसार में एक से एक बढ़िया पुरुष रहते हैं कोई–कोई ऐसे भाग्यशाली भी हो सकते हैं जिनकी सुंदरता को देख कामदेव भी लज्जित हो जाता है। जैसा मैं कन्या का वर गुणी विद्वान सुंदर चाहता था वैसा ही यह कन्या के पुण्यप्रभाव से मिल गया।''

इस प्रकार श्रृंगारमति के पिता ने जिनदत्त को सर्वथा उसे योग्य समझकर शुभमूहूर्त और शुभ दिन में विवाहकर दिया एवं जिनदत्त भी कुछ दिन वहाँ रहकर अपनी कांता के साथ ससुर से दिये गये उपहार को ले अपने नगर की ओर चल दिये।

छोटी–छोटी घंटरियों के शब्दों के करने से महामनोहर लगने वाले, ध्वजाओं से मंडित, मोतियों की माला से सुसज्जित बहुत लंबे चौड़े विमान में बैठकर मार्ग को तय करते हुये जिनदत्त और श्रृंगारमती आकाश में चले जा रहे थे कि इतने में चंपापुरी आ गई और रात्रि पड़ गई। रात्रि के हो जाने से जिनदत्त ने अपनी प्यारी श्रृंगारमती से कहा – प्रिये! पहिले मैं सो जाता हूँ और तू जागती रहना। इसके बाद थोड़ी देर सो कर फिर कहा – मैं सो लिया अब तू सो जा। मैं यहाँ तेरे सामने ही जागकर बैठा हूँ।'' पति की आज्ञानुसार श्रृंगारमती जब खूब सो गई जिनदत्त कुछ अपने मन में विचार कर वहाँ से कहीं को चलते बने। कुछ समय बाद जब श्रृंगारमती ने करवट बदली और उसकी आँखें खुली तो अपने पति का समीप न पा चौंक पड़ी एवं निर्जन जंगल के समान सुनसान भयंकर विमान को देखकर संघभ्रष्ट हरिणी के समान इस प्रकार करुणोत्पादक रुदन करने लगी –

''हा! प्राणाधार प्रियतम! आप मुझे अबला को एकाकिनी इस शून्य प्रदेश में छोड़ कहाँ बिना कुछ कहे सुने ही चले गये। मैं आपके वियोग को क्षणमात्र भी नहीं सकह सकती। यदि आप मुझसे इस प्रकार छिपकर हँसी कर रहे हैं तो कृपाकर शीघ्र ही इस मर्मभेदी मेरी छाती को फाड़नेवाली दिल्लगी को संकुचित कर लीजिये। क्यों आपको नहीं मालूम? जिस प्रकार शीतल भी पाले (हिम) का समूह मालती पुष्प की

कली को मुरझा देता है उसी प्रकार आनंददायी भी इस समय का यह आपका हास्य मुझे अकथनीय दु:ख पहुँचा रहा है। अथवा हे प्राणेश्वर! आपको किसी अन्य वैरी विद्याधर की कन्या ने हर लिया है परंतु स्वप्न में भी किसी का कुछ अनिष्ट न करने से यह भी संभव नहीं होता। हाँ! अब मालूम हुआ! इसमें किसी का भी दोष नहीं है सब मेरे पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म ही मुझे फल दे रहे हैं, नियम से मैंने पूर्व भव में नि:शंक क्रीड़ा करते हुये राजहंसी राजहंस में से राजहंस को कुंकुमादि से भिन्न रंग का कर वियुक्त किया होगा। अथवा अपने रीतकाल में अपनी प्यारी से संगम को उत्सुक चक्रवाह किसी चक्रवाही से वियुक्त कर दिया होगा। अथवा अपने भर्तार के सहवास की लोलुपी कोई अपनी सपत्नी स्त्री कामाग्नि बुझाने से किसी न किसी प्रकार रोक दी होगी। इन्हीं समस्त पापों का अवश्य ही भोग फल मुझे इस जन्म में प्राप्त हुआ है। हे नाथ! मैं इस निर्जन जंगल में रहकर क्या करूँ? यदि आप मुझे नहीं चाहते घृणा करते तो कृपाकर मुझे अपने माँ-बाप के घर छोड़ आईये मैं यहाँ से अकेली नहीं जा सकती क्योंकि ऐसा करने से आपके वियोगजन्य दु:ख के सिवाय संसार में मेरी अकीर्ति भी होगी, मैंने आज तक अपनी समझ में कोई अपराध नहीं किया है। और यदि किया भी है तो भी कृपाकर अन्य कुछ नहीं एक बार दर्शन तो दीजिये आप तो बड़े ही करुणावान् थे आपकी इस तरह की उपेक्षा शोभा नहीं देती।

इस प्रकार हिचक हिचक रोने के साथ श्रृंगारमती विलाप कर रही थी कि इसकी ध्वनि समीप के जिन मंदिर में रहने वाली उन पूर्वोक्त दोनों कुमारियों के कान में पड़ी। ज्योंहि उन्होंने स्वर से किसी दु:खिनी स्त्री की आवाज पहिचानी तो वे शीघ्र ही उस ध्वनि की तरफ चलकर वहाँ आई और बगीचें के एक वृक्ष के नीचे वनदेवी के समान श्रृंगारमती को रोती पा उसें समझाने लगीं। कुमारियों के यथार्थ समझाने से श्रृंगारमती का दु:ख बहुत कुछ घट गया और वह अपने विमान आदि को समेट कर जिन मंदिर में चली आई। जिनेन्द्र भगवान के भक्ति पूर्वक दर्शन कर चुकने के बाद वे तीनों एक जगह बैठीं और सबसे पहिले श्रृंगारमती का चरित्र सुन अपना चरित्र सुनाने लगीं एवं इस प्रकार उसे समझाने लगी –

''सखि विद्याधर पुत्री! बहिन! शोक मत कर! शोक करने से अभीष्ट सिद्धि नहीं होती। हम दोनों भी तो तेरे ही समान पति से वियुक्त दु:खिनी हैं। इस दु:खों के खजाने रूप चतुर्गति संसार में अपने-अपने कर्मों के अनुकूल घूमते हुये प्राणियों को

सैकड़ों और हजारों इससे भी महान् महाबलवान् दु:ख भोगने पड़ते हैं इसलिये विषादकर और भी अशुभ कर्मों का उपार्जन करना उचित नहीं।'' विमलमती और श्रीमती के समझाने से विद्याधर पुत्री का शोक शांत हो गया और वे तीनों एक साथ मिलजुलकर पात्रदान, जिनपूजा, शास्त्रस्वाध्याय और सामायिक आदि धार्मिक कृत्यों को करती हुई समय बिताने लगी।

हमारे चरित्रनायक कुमार जिनदत्त अपनी प्रियत्तम श्रृंगारमती को धोखा देकर नगर में भीतर गये और बौना का रूप बनाकर इधर उधर गाने से लोगों के मन को हरण करते हुये डोलने लगे। धीरे-धीरे इनका नगर में परिचय बढ़ने लगा और ये गंधर्वदत्त अपना नाम बता लोगों में प्रसिद्ध हो गये। यहाँ तक कि ये एक दिन राजदरबार में पहुँचे और अपने गायनगुण से राजा को प्रसन्न कर वेतनभोगी दरबार के गवैया हो आनंद से रहने लगे। एक दिन की बात है कि राजसभा के समय आकर एक पुरुष ने राजा से कहा-महाराज! इसी नगरी के एक जिनालय में तीन परमसुंदरी नवयुवती स्त्रियाँ रहती हैं न जाने क्या कारण है जो न तो वे कभी हँसती हैं और न कभी किसी पुरुष से बातचीत ही करती हैं सिवा अपने धर्म ध्यान के उन्हें कुछ सुहाता ही नहीं है।''

उस पुरुष की यह विचित्र बात सुन राजा ने गंधर्वदत्त रुपधारी जिनदत्त की ओर दृष्टि फेरी। जिसके उत्तर में उसने (जिनदत्त ने) मुस्कराकर कहा -

''महाराज! जब मनुष्यमात्र श्रृंगार का प्रेमी होता है। तब उनकी तो क्या बात? वे तो स्त्रियाँ हैं वे अवश्य ही होगी। मैं अपने प्रयत्न से वृक्षों तक को विकास और हास्य से सुसंपन्न कर सकता हूँ। मनुष्य की तो फिर बात ही क्या है? तिस पर उन स्त्रियों को तो अवश्य ही कर दूँगा।''

जिनदत्त की इस प्रकार अहंकार पूर्ण बात सुनकर राजा ने कुछ आदमियों को साथ में जाने की कह उन्हें उन तीनों स्त्रियों को प्रसन्न करने के लिये भेजा और वे भी अपने पूर्व में ही किये गये संकेतों से सहित हो अपनी मंडली के साथ-साथ जिनालय की तरफ रवाना हुये।

जिन मंदिर में पहुँचकर जिनदत्त ने पहिले तो भगवान की स्तुति भक्ति और पश्चात् गायन आदि कर अपने साथियों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर कहा-अच्छा

मित्रों! यदि यही इच्छा है तो तुम लोग सब सावधान हो जाओ। मैं एक बढ़िया कथा कहता हूँ। इसके बाद अपना ही समस्त वृतांत जो कुछ बीता था वह बसंतपुर से लगाकर चंपापुरी के उद्यान में विमलमती के त्याग करने तक का कह डाला। जिसे सुनकर बीच में ही विमलमती बोल उठी–''तुम्हारी कथा तो बहुत ही अच्छी है। अच्छा! फिर उससे आगे क्या हुआ सो कहो।'' इसे सुनकर जिनदत्त के साथियों ने 'अजी! राजमंदिर जाने का समय हो गया कल फिर आकर कहना।' आदि कहकर उन्हें रोक दिया और साथ में ले अपने स्थान चले आये। दूसरे दिन फिर आकर वामनरूपधारी जिनदत्त ने अपना चंपापुरी के उद्यान से आगे जाने का और द्वीप से लौटते समुद्र में गिरने तक का वृतांत कह सुनाया। जिसे सुनकर श्रीमती ने कहा – हाँ! फिर उससे आगे की और कथा सुनाईये। फिर क्या हुआ? आप की कथा बड़ी ही मनोहर है।'' इसके उत्तर में क्या हम तुम्हारे अधीन हैं जो कहते ही चले जायें। अब हमारा समय हो गया अब तो राजमंदिर जाते हैं। कहकर जिनदत्त अपनी मंडली के साथ चले गये। और श्रीमती एवं विमला भी आश्चर्य सागर में डुबकी लगाती लगाती किसी तरह समय बिताने लगी। इसके दूसरे दिन फिर मंदिर जी में जिनदत्त आये और रथनपुर से लेकर श्रृंगारमती के छोड़ने समय तक का वृतांत सुनाकर चुप हो गये। शेष अग्रिम कथा सुनाने का भी जब श्रृंगारमती ने आग्रह किया तो यह कहकर कि 'कल सवेरे आकर कहूँगा।' अपने स्थान चले गये। और उन तीनों स्त्रियों को प्रसन्न करने से राजा द्वारा पारितोषिक पा आनंदित हुये।

एक दिन की बात है कि नगर में बड़ा ही जोर–शोर से कोलाहल हुआ। लोगों की कलकलाहट सुनकर राजा ने पास बैठे हुये आदमी से उसका कारण पूछा। उत्तर में उसने कहा –

''महाराज! मलयसुंदर नाम का सरकारी हाथी अपने आलान स्तंभ को तोड़कर मद से माता हुआ इधर उधर नि:शंक घूमता फिरता है। जो कोई पशु व मनुष्य उसके पंजे में अगाड़ी फंस जाता है वह भी बिचारा बिना ही किसी विलंब के यमराज के मंदिर का अतिथि हो जाता है वह मत्त हाथी किसी को भी नही छोड़ता। जो कुछ उसके सामने परकोट, बगीचा, हवेली देवालय आदि पड़ते हैं उन्हें ही निर्दय हो ढाह देता है।''

समीपस्थ पुरुष के मुख से हाथी के इस उपद्रव को सुनकर राजा ने अनेक पराक्रमी–पराक्रमी श्रेष्ठ वीर उसे वश करने के लिये भेजे। जब किसी से भी वह शांत न हुआ और तीन दिन तक बराबर एक सी ही प्रजा में खलबली मची रही तो राजा ने ढोंढी पिटवाई कि जो कोई पुरुष इस हाथी को वश में कर लेगा मैं अपनी पुत्री देने के सिवा सामंत का पद भी दूँगा।"

वामनरूपधारी जिनदत्त ने जब यह राजाज्ञा सुनी तो तत्काल ही हस्ती करने की ठान ली और तदनुसार अपनी चतुराई से आगे पीछे बगल से और पेट के नीचे से आक्रमण कर उसे वश भी कर लिया एवं उस पर सवार हो प्रजा के वाह–वाह के शब्द लूटा राजमंदिर में पहुँच आलानस्तंभ से उसे बांध सुखी हुआ।

इस प्रकार श्रीमद्–आचार्य गुणभद्रभदंतविरचित जिनदत्तचरित्र के भावानुवाद में छठवां सर्ग समाप्त हुआ।।6।।

***

सातवाँ सर्ग

राजाज्ञानुसार जब जिनदत्त ने अपने कौशल से मत्त हाथी को वश कर लिया तो राजा ने उसे अपनी पुत्री के प्रदानार्थ मंत्रियों से सलाह की कि 'जिस पुरुष के कुल का पता नहीं उसे कन्या किस तरह प्रतिज्ञानुसार दी जाये?' उत्तर में मंत्रियों ने कहा –

''महाराज! इसमें शंका करने की कोई आवश्यकता नहीं। इस महापराक्रमशाली पुरुष की आकृति से ही इसके मातृ और पितृ कुल की शुद्धि मालूम पड़ रही है। जिस प्रकार मेघ के आच्छादन से आच्छन्न सूर्य आकाश में भ्रमण किया करता है परंतु उसका तेज नहीं छिपता उसी प्रकार अवश्य ही यह कोई विशुद्ध वंशोद्भव पुण्यशाली पुरुष अपने रूप को बदलकर इधर–उधर विनोदार्थ घूम रहा है। परंतु इसका माहत्म्य किसी से छिपाये नहीं छिपता। यह महामना अपने पराक्रम, धैर्य और विज्ञान से देवों तक को आश्चर्य उत्पन्न करता है जिसका कुल उच्च नहीं वा दूषित है उसमें ऐसे गुण नहीं हो सकते इसलिये नि:शंक हो दोनों मातृ पितृ कुल से शुद्ध इस पुण्यात्मा को पुत्री दीजिये। अथवा यदि इस पर भी आप राजी न हों तो इससे ही इसका कुल जाति आदि पूछ लीजिये।'' मंत्रियों के इन वाक्यों से सम्मत हो राजा ने जिनदत्त से पूछा – 'हे सज्जन शिरोमणि! यद्यपि आकार, विज्ञान, पराक्रम और धैर्य आदि गुणों से तुम मुझे निश्चय से श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न मालूम पड़ते हो परंतु तो भी यह अनुमान ही अनुमान है। हमारे संदेह को दूर करने के लिये कृपाकर प्रसन्न होईये और अपना समस्त परिचय दीजिये।' राजा के इस प्रश्न को सुनकर जिनदत्त ने कहा–

''महाराज! सच है! आपको बिना बतलाये कैसे मालूम हो सकता है। मैं बसंतपुर के सेठ वैश्यराज जीवदेव का पुत्र हूँ। मेरा नाम जिनदत्त है। मैंने आपके ही नगर निवासी विमल सेठ की एक विमलमति नाम की पुत्री को ब्याहा है। उसके बाद सिंहलद्वीप के राजा की पुत्री और उसके बाद विद्याधरों के अधिपति अशोकश्री की पुत्री

के साथ भी विवाह किया है। वे मेरी तीनों स्त्रियाँ इसी चंपापुरी नगरी के जिन मंदिर में रहती हैं। और मेरे संगम की बाट हेर रही हैं। देव! मैंने इस जन्म में बहुत सी तो विपत्ति झेली है और बहुत सी संपत्तियों का भोग किया है एवं अनेक विद्याओं को प्राप्त कर इस जगह अनेक क्रीड़ायें की है।

जिनदत्त का यह वृत्तांत सुन और उसके अभिप्राय को जानकर राजा ने उन जिनमंदिरवासिनी तीनों स्त्रियों को बुला भेजा एवं वे भी कंचुकियों के साथ-साथ राजसभा में आ उपस्थित हो गई। उन्हें देख राजा ने बड़े प्यार से पास में बैठाकर जिनदत्त को लक्ष्यकर कहा - 'हे महासती पुत्रियों! यह पुरुष तुम्हें अपनी पत्नी स्त्री बतलाता है। क्या यह सच है?'' उत्तर में उन तीनों ने एक दूसरे का मुँह देखकर कहा - हे पिता! ये उनका केवल वृतांत जानते हैं पर वे नहीं है।'' अपनी स्त्रियों की यह बात सुन जिनदत्त को हँसी आ गई पर वे कपड़े से उसे छिपा गये इधर राजा ने यह अचंभे की बात सुनकर फिर कहा -''पुत्रियों! देखो! खूब सोच समझकर बतलाओ। क्या वास्तव में ही यह तुम्हारा पति नहीं है?'' राजा की बात सुनकर पुत्रियों ने फिर भी यही उत्तर देकर कहा-महाराज! अन्य की तो क्या बात? इनका और उनका तो रंग में भी सादृश्य नहीं है, अब अधिक देर तक इस प्रकार ही उलझन में डाले रहना उचित न समझ जिनदत्त ने अपना रंग वही रख सांचारूप दिखा दिया। अब तो वे तीनों स्त्रियाँ आश्चर्य में मग्न हो लज्जित हो गई और राजा से बोली 'तात! ये ही हमारे पति है पर केवल रंग में ये काले हैं और वे पीले थे।' स्त्रियों की यह बात सुन जिनदत्त ने अपना रंग भी बदल डाला। यह देख उनसे न रहा गया वे मोह से रोमांचित हो शीघ्र ही पति जिनदत्त के पैरों में पड़ गई और जो विरहाग्नि रात-दिन हृदयों में धड़क रही थी उसे आनंदाश्रुओं से बुझाकर शांत हुई। उस समय जो पति के मिलने से उन्हें हर्ष हुआ वह अकथनीय है - उसे कोई नहीं कह सकता। अपनी चिरवियुक्त पत्नियों से मिलकर जिनदत्त को भी हर्ष हुआ और उस समय का सा उनका यथायोग्य सत्कार कर पास में बिठा लिया।

विमलपति के पिता सेठ विमल को जब यह समाचार मालूम पड़ा कि उनके जमाई मिल गये हैं तो वे शीघ्र ही राजसभा में आये और राजा को नमस्कार कर जिनदत्त के आलिंगनादि से परमहर्षित हो उन्हें क्षेम कुशल पुछने लगे। यथायोग्य

सत्कारादि के बाद मौका देखकर राजा से विमलसेठ ने जिनदत्त को अपने घर ले जाने के लिये सम्मति प्रदान करने को कहा। उत्तर में पहिले तो राजा ने बहुत सी मनाई की पर जब अधिक सेठ का आग्रह देखा तो भेजने के लिये राजी हो गये। राजाज्ञानुसार जिनदत्त को उनकी स्त्रियों सहित अपने घर लाकर सेठ विमल ने उनका खूब ही सत्कार किया और गीत वादित्र आदि से मंगलाचार प्रारंभ कराया। यह देख नगर की बहुत सी स्त्रियाँ जिनदत्त से मिलने आई और कुशल क्षेम पूछकर संतुष्ट हुई। समस्त मांगलिक विधियों के समाप्त हो जाने पर जिनदत्त ने अपने सासु–ससुर आदि को अपनी भ्रमणकथा सुनाई और अपनी प्रियतमाओं से उनकी बात पूछी। इसके बाद जिनपूजा, अभिषेक, आदि धार्मिक उत्सव कर दीन–दरिद्रियों को उनकी इच्छा और आवश्यकतानुसार दान दिया।

चंपानगरी के राजा ने सब प्रकार से संतुष्ट हो जिनदत्त के साथ अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार शुभमुहूर्त, शुभ लग्न और शुभ दिन में शुभविधि से अपनी कन्या का विवाह कर दिया एवं बहुत से वस्त्र आभूषण और देश भेंट में दे इसे सबसे उत्तम सामंत कर दिया।

जब कुमार जिनदत्त राजसम्मान से सम्मानित और यथेष्ट धनाढ्य हो गये तो उन्होंने अपने पिता के पास साथ में नाना द्वीपों के नाना रत्नों को देकर संदेशवाहक भेजे। जिनसे अपने इकलौते पुत्र कें सुख समाचार पा सेठ जीवदेव को अपार आनंद हुआ। जिस प्रकार चंद्रमा के उदय से समुद्र अपने अंग में नहीं समाता बढ़कर आगे बढ़ जाता है। उसी प्रकार सेठ जीवदेव का हर्ष हृदय में न समा रोमांचों के छल से बाहर निकल पड़ा। उन्होंने शीघ्र ही कुछ आदमी अपने पुत्र जिनदत्त के पास उन्हें लिवाने भेजे और उन्होंने भी पहुँचकर आदर से जिनदत्त की सेवा में इस प्रकार निवेदन किया।

"हे सर्वोत्तम! आपके पिता आपके वियोग में सूख–सूख कर बिल्कुल कांतिहीन हो गये हैं। उन्हें आपकी याद में खाना–पीना तक नहीं सुहाता। आपकी माता तो आपके पास न होने से रात दिन रोया ही करती हैं उनकी गंडस्थली सदा आँसुओं के प्रवाह से भीगी और आँखों में माँजे गये काजल के बहने से काली ही रहती हैं और भी अन्य जो आपके कुटुंबी है वे भी सब आपकी विरहाग्नि से संतृप्त हो दु:ख पा रहे हैं एवं सब आपके मुखचंद्र को देखने के लिये लालायित हो रहे हैं इसलिये आपके पिताजी ने हमें

आपकी सेवा में भेजा है कृपाकर शीघ्र ही चलिये और अपने संयोग से सबको सुखी बनाईये।''

अपने पिता के पास से बुलाने के लिये आये हुये आदमियों के संदेश को सुनकर जिनदत्त से भी न रहा गया। उनका हृदय भी अपने माता–पिता और कुटुंबियों से मिलने के लिये लालायित हो गया। उन्होंने शीघ्र ही अपने ससुर से और राजा से अपने नगर की ओर जाने की सम्मति मांगी एवं उसके मिल जाने पर अपनी समस्त स्त्रियों और परिवार के साथ मनोहर विमान में सवार हो ठाठ–बाट के साथ चल दिये।

महासामंत जिनदत्त उत्साह और सुख के साथ अपने नगर की ओर रवाना होकर शीघ्र ही अपने पिता के पास जा पहुँचे। और पिता ने भी बड़े भारी उत्सव के साथ चारों बहुओं के संग हर्षसहित इनका घर में प्रवेश कराया।

इस प्रकार श्रीमान् भगवद् गुणभद्रभदंतविरचित जिनदत्त के भावानुवाद में यह सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।7।।

***

आठवाँ सर्ग

उस समय होने वाले समस्त मांगलिक चिह्नों से भूषित गृह में प्रवेश कर जिनदत्त ने माता को प्रणाम किया और वह भी अपने चिरवियुक्त पुत्र को देखकर रोने लगी। माता की यह दशा देख जिनदत्त ने उसे अच्छी तरह धैर्य दे समझा और उसके बाद क्रम-क्रम से अपनी वृद्धाओं को प्रणाम कर उनकी आशिषें ग्रहण करके भद्रासन पर बैठ गये। इसके बाद नगर की तथा कुटुम्ब की स्त्रियों ने उनके ऊपर अक्षत बिखेरे और सैकड़ों गाजो-बाजों के साथ मंगल गीत गोय। इस प्रकार जिनदत्त के जब मंगलाचार और आदर सत्कार हो चुके तो उनकी श्रीमती विमलमति आदि स्त्रियों ने भी अपने-अपने क्रम से अपनी वृद्धाओं के पैर आदि छुए और उन्होंने भी उनका यथायोग्य सत्कार किया।

जब समस्त घर का उत्सव समाप्त हो गया तो जिनदत्त अपनी प्रियतमाओं के साथ नगर के समस्त जिनमंदिरों की वंदना के लिये गये और गुरुओं के चरणकमलों में भक्ति से नमस्कार कर जब लौट आये तो दीन दरिद्रियों को उनकी आवश्यकतानुसार यथेष्ट दान दिया। बसंतपुर के नृपति चंद्रशेखर ने जब इनकी लोगों के मुख से प्रशंसा सुनी तो उसने भी खूब आदर सत्कार किया जिससे कि राजसम्मान और प्रजासम्मान दोनों के साथ स्वर्ग में देवों के समान अपने नगर में इन्द्रिय सुखों को भोगते ये काल बिताने लगे।

जिनदत्त आजकल के से धनाढ्य युवकों के समान निरंतर इंद्रिय विषयों के लोलुपी सर्वदा उसी के भोगने में अनुरक्त रहने वाले न थे उन्हें अपने धर्म ध्यान का भी पूरा ख्याल था। वे जिस प्रकार भोग सामग्रियों के एकत्र करने के लिये द्रव्य खर्चते थे उसी तरह बगीचे, बावड़ी आदि से शोभित जिनमंदिरों के निर्माण कराने में खूब धन लगाते थे। श्रावक, श्राविका आर्यिका और मुनियों को उनकी अवस्था के अनुकूल यथेष्ट चारों प्रकार का दान देते थे, विशेष-विशेष पर्व के दिनों में अनेक श्रावकों को

साथ मे ले जिनमंदिरों में जा-जाकर भगवान का पूजन अभिषेक करते थे और तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों की भूमि में जा-जाकर चारण ऋद्धिधारी आदि मुनियों के दर्शन कर उनसे धर्मोपदेश सुनते थे।

हमारे चरित्रनायक के इस तरह धार्मिक कृत्यों के करने से अन्य समस्त नगर निवासियों पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता था। वे इनके धनाढ्य होने पर प्रबल धार्मिक भाव को देखकर खूब ही धर्म ध्यान करने से दृढ़ हो जाते थे। धर्म के प्रभाव से जिनदत्त के हाथी, घोड़ा, रथ, गाय, सोना, चाँदी आदि सब प्रकार की संपत्ति यथेष्ट हो गई थी। जिस प्रकार समुद्र में तरंगों का पता नहीं लगता कि कितनी आई और कितनी गई उसी प्रकार जिनदत्त की संपत्तियों की गिनती न थी। पुत्र इनके पहिली स्त्री विमलमती से तो सुदत्त और जयदत्त थे, श्रीमती से बसंतलेखा पुत्री और सुप्रभ पुत्र था, विद्याधर पुत्री श्रृंगारमती से सुकेतु, जयकेतु और गरुड़केतु तो पुत्र एवं विजयमती पुत्री उत्पन्न थी। तथा चौथी स्त्री (चंपानगरी के महाराजा की पुत्री) से सुमित्र, जयमित्र, वसुमित्र तो पुत्र एवं प्रभावती नाम की पुत्री थी। इस तरह कुल मिलाकर इनके नौ तो पुत्र थे और तीन पुत्रियाँ थी एवं उनके सबके यथायोग्य रीति से अपनी अवस्थानुसार ठाठ-बाठ से जन्मोत्सव नामकरण और विवाह आदि उत्सव कराये थे।

इस तरह धर्म, अर्थ और काम तीनों को समान रीति से पालते हुये जिनदत्त का समय बीत रहा था कि एक दिन श्रृंगाररहित नामक उद्यान में माली ने वहाँ सब ऋतुओं के एक साथ फलफूल आये देख आश्चर्य में मग्न हो आकर इनसे कहा -

"श्रेष्ठिन्! बड़े ही आनंद और उत्सव की बात है कि आज प्रातः काल मति, श्रुति, अवधि और मनः पर्याय चार ज्ञान के धारक समाधिगुप्त नाम के मुनि महाराज हमारे श्रृंगारतिलक नाम के बगीचे में पधारे हैं और उनके प्रभाव से उनकी सेवा करने के लिये ही मानों वहाँ छहों ऋतुऐं उपस्थित हो गई हैं जो कि असमय में ही समस्त वृक्ष फल-फूलों से लदबदा गये हैं। महाराज! और की तो क्या बात? जलाशय (जलाशय जल के स्थान, मूर्ख) तालाब भी उनके आगमन की खुशी में अपने कमलरूपी नेत्रों को फाड़-फाड़ कर इधर-उधर देख रहे हैं। शब्दकर गुंजारते हुये भ्रमर पुष्पों की सुगंधि के लोभ से इधर-उधर घूम रहे हैं। सो वे मुनि के भय से रोकर भागते हुये पाप सरीखे मालूम पड़ते हैं। आम्रवृक्षों के ऊपर नवीन मंजरी के आ जाने से उसके भक्षण करने से

मत्त हुई कोकिलायें जो शब्द करती हैं वे मुनिदर्शन के लिये भव्यों को बुलाती सरीखीं मालूम पड़ती है। जो लताएँ बंध्या थीं जिन पर आज तक फल-फूल न आये थे वे भी आज मुनि के माहात्म्य से फल पुष्पों से व्याप्त दीख रही है। जिस प्रकार बड़े भारी आनंद में आकर स्त्रियाँ अपने हावभाव अंगचालन आदि पूर्वक नृत्य करती हैं उसी प्रकार उस उद्यान की लताएँ भी मंध सुगंध पवन से प्रेरित हो मुनिदर्शन के आनंद से भरपूर के समान अपनी कुसमांजलि को बिखेर कर उत्सव करती मालूम पड़ती है। देव! इस प्रकार आश्चर्य को करने वाली महिमा के धारक वे मुनिमहाराज अकेले नहीं है, उनके साथ अन्य भी बहुत से भिन्न-भिन्न ऋद्धियों के धारक, धर्म की जीती जागती मूर्तियों के समान अनेक मुनि हैं जो कि समस्त पापों के नाशक, स्वाध्याय और ध्यान कर्म में सर्वदा संलग्न रहते हैं।''

इस प्रकार वनपाल के मुख से चार ज्ञान के धारक समाधि गुप्ति मुनि महाराज के आगम का वृतांत सुनकर जिनदत्त को अपार हर्ष हुआ और अपने आसन से जिस दिशा में मुनि महाराज विराजमान थे उसी में सात पैड़ जाकर उन्हें भक्ति भाव से परोक्ष नमस्कार किया। इसके बाद अपने भाई बंधुओं के साथ-साथ उस समय के योग्य वाहन में सवार हो श्रृंगारतिलक बगीचे की ओर मुनिदर्शन के लिये चल दिये।

जिस समय उद्यान थोड़ी दूर रह गया तो हमारे चरित्रनायक और उनके साथी विनय से नम्र हो अपनी-अपनी सवारियों से उतरे और वहाँ से पैदल ही जहाँ पर मुनिमहाराज थे पहुँचे। मुनिराज अशोक वृक्ष के नीचे एक निर्मल शिलातल पर विराजमान थे, उनके समीप पहुँचकर जिनदत्त ने उनकी तीन प्रदक्षिणायें दी। भक्ति भाव से स्तुति पढ़ी और यथाक्रम से अन्य मुनियों को भी नमस्कारादि कर हाथ जोड़े ही यथास्थान पर बैठ गये। जिनदत्त और उनके साथियों को आया देख उनके नमस्कारादि कर चुकने के बाद मुनि महाराज ने भी उन्हें पुण्याकुंर के समान अपनी दांतों के किरणों से सभा को शुक्ल करते हुये धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार जब समस्त परस्पर का कर्त्तव्य हो चुका तो जिनदत्त ने भक्तिभाव से नम्र होकर कहा -

''हे तीनों जगतों के नाथ! हे सर्वश्रेष्ठ!! हे मुनिराज!!! आज मेरा बड़ा ही अहोभाग्य है जो आपके पवित्रदर्शन मुझे हो गये। अन्यथा मुझ सरीखे मूढ़बुद्धि पापियों को आपके शुभदर्शन कहाँ? महाराज! यह संसार मोहरूपी अंधकार से सघन व्याप्त है

इसको आप सरीखे महामना तपस्वियों की वचन किरणों के प्रकाश से ही पार किया जा सकता है। यदि आप सरीखे सर्वथा मूढ़ता के नाशक देदीप्यमान रत्नदीपक इस मोह के पूर्ण संसार में नहीं हो तो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि समस्त ही प्राणी मरण रूप अंधे कुँए में गिरकर अपने अंनतज्ञान आदि प्राण गंवा बैठे। इन्द्रिय विषयों के भोगने की लालसा रूप अग्नि से निरंतर जलने वाले इस संसार में आप सरीखे सच्चे अमृत बरसाने वाले मुनि मेघों का भव्यों के पुण्यप्रताप से ही उदय होता है। जो मनुष्य आपके पवित्र चरण कमलों की एक बार संगति पाकर भी संसार के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझता वह मंदभाग्य मूढ़ रत्नों के खजाने रूप समुद्र के पास जाकर भी रत्नों को ग्रहण न कर शंख को ही ग्रहण करता है। हे देव! जिस जगह सूर्य और चंद्रमा की तीक्ष्ण किरणें प्रविष्ट हो अंधकार दूर कर पदार्थ दिखा नहीं सकती वहाँ भी आपका ज्ञानरूप चक्षु अपने प्रभाव से पदार्थ देखता है। इसलिये हे नाथ! संसार समुद्र के पार कराने वाली आपकी कृपा के द्वारा मैं अपने पूर्व का भव का समस्त वृतांत सुनना चाहता हूँ। हे योगीन्द्र! मैंने किस कर्म के द्वारा तो अपारसंपत्ति पा सुख भोगा और किसके द्वारा विपत्तियाँ झेली एवं किस तरह दूर-दूर देश में उत्पन्न होने वाली इन चार स्त्रियों का संगम हुआ।

जिनदत्त के इस अपने पूर्व भव के वृतांत को जानने की इच्छा वाले प्रश्न को सुनकर मुनिमहाराज बोले -

'हे महाभव्य! तुमने जो अपने पूर्वभव पूछे हैं वे ठीक हैं। परन्तु इस अनादि अनंत चतुर्गतिरूप संसार में कर्मों के अधीन हो सुख सरीखे लगने वाले वास्तविक दु:खों को भोगते हुये प्राणियों को अनंतकाल बीत चुका है। उस गत समय में जो मनुष्य तिर्यंच नारकी और देवों के अनंत जन्म धारे हैं उनको केवली सर्वज्ञ भगवान् भी जानते तो हैं परन्तु कह नहीं सकते। इसलिये तुम्हारे पूर्व के अन्य भवों को छोड़कर इस जन्म से पहिले जन्म को ही कहता हूँ। और उसी भव में तुम्हारा कल्याण भी हुआ है। तुम सावधान हो मन लगाकर सुनो।

इसी जम्बूद्वीप के बीच जो यह भरत क्षेत्र है उसमें अपनी शोभा से स्वर्ग को भी लजाने वाला अवंति देश हैं। वहाँ पर भ्रमर गुणशालीधान्यों के केदारों पर उनकी सुगंधि से मत्त हो होकर जाते हैं। सो ठीक ही है जिन लोगों के दोनों पक्ष (मातृ पितृ कुल

पंख) मलिन (काले) हैं वे केदार–कौन लोग दारों पर स्त्रियों से पराङ्मुख होते हैं। उस देश में जगह–जगह जलाशय–तालाब हैं और वे श्रीकृष्ण सरीखे मालूम पड़ते हैं क्योंकि जिस प्रकार श्रीकृष्ण चक्र–अस्त्र विशेष से शोभित राजहंसों में श्रेष्ठ राजाओं से सेवित और पद्मा लक्ष्मी से आढ्य सहित है उसी प्रकार वे तालाब भी चक्र–चक्रवी से शोभित, राजहंसों से सेवित, और पद्मों से सहित हैं वहाँ की प्रजा श्रेष्ठ कवि की कविता के समान गुणवाली है जिस प्रकार कवि की कविता रस से सरस रसवती होती है, उसी प्रकार प्रजा भी सरसआनंद भोगने वाली है। जिस प्रकार कविता अलंकार शब्दालंकार प्रभृति काव्य के अलंकारों से भूषित होती है उसी प्रकार वहाँ की प्रजा भी श्रेष्ठ–श्रेष्ठ अलंकार भूषणों से सुशोभित है। कविता जिस प्रकार व्यक्त वर्ण व्यवस्थित–वर्णों की स्पष्टता से व्यक्त होती है उसी प्रकार वहाँ की प्रजा भी वर्ण–ब्राह्मण आदि वर्णों की व्यक्त स्थिति से रहित सहित है। और जिस प्रकार कविता प्रसादौजौयुता प्रसाद ओज आदि काव्य के गुणों से युक्त रहती है उसी प्रकार वहाँ की प्रजा भी प्रसन्नता तेजस्विता आदि गुणों से सर्वदा युक्त रहती है।

इस प्रकार की शोभा से शोभित उस अवंति देश में उज्जयिनी नाम की एक नगरी है। उसके चारों ओर एक परकोट है और उसके चारों और एक खाई है जो कि परकोट के शिखर में लगे हुये पद्मरागमणियों की किरणों की कांति से चकवा चकवियों की विरह व्यथा को सर्वदा हरण किया करती और सूर्य के उदय अनुदय की उन (चकवा चकवियों) को कुछ भी चिंता नहीं करने देती। उस नगरी के प्रासादों में लगी हुई नील मणियों की कांति से शवल हुआ चंद्रमा सर्वदाही रात्रियों में स्वछंदचारिणियों के हर्ष को करता रहता है एवं वह नगरी ब्रह्मा से पुण्यात्मा लोगों के लिये समस्त संपत्तियों की जन्म भूमि सरीखी बनाई गई मालूम पड़ती है।

उस उज्जयिनी नगरी का एक छत्राधिपति विक्रमधर्म नाम का राजा था जिसका कि समस्त संसार में निर्मल यश विस्तृत था और जिसके प्रताप से ही शत्रु लोगों के वशीभूत हो जाने से चतुरंगबल केवल शोभा के लिये ही था। उस विक्रम धर्मराजा के पद्मश्री नामकी सर्वस्त्रियों के गुणों से भूषित परम सुंदरी पट्टरानी थी। इसी राजा के धर्मराज्य में धनदेव नाम का एक अतिधनाढ्य सेठ रहता था और उसके कुल एवं शील से पवित्र परम रूपवती, गृहस्थी के समस्त कार्यों में सुचतुर यशोमती नामकी स्त्री थी।

ये सेठ सेठानी अपने पूर्वपुण्य के प्रभाव से मनमाने सांसारिक सुख भोगते थे। कुछ काल के बीतने पर उनके तुम पुत्र हुये और तुम्हारे पिता ने अपने भाई-बंधुओं के साथ उत्सव कर शिवदेव नाम रखा। तुमने उससे पहिले जन्म में घोर पाप किये थे इसलिये शिवदेव के भव में वे उदय में आये और उसी के कारण ज्यों-ज्यों तुम बढ़ने लगे त्यों-त्यों कुटुंबियों की घटवारी के संग-संग तुम्हारे पिता का धन भी घटने लगा। आखिर एक दिन ऐसा पाप का उदय आया कि बाजार की सड़क पर आकाश से टूटकर बिजली गिरी और उसके नीचे दबकर तुम्हारे पिता परलोक सिधार गये। तुम्हारे पिता की मृत्यु होने पर दु:खित हो कुटुंबियों ने उनकी दाह क्रिया कर दी और समय बीतने पर उन्हें भुला भी दिया परंतु तुम्हारी माता को बड़ा ही कष्ट पहुँचा वह बिलख-बिलख कर रोने लगी।

'हाँ नाथ! हा इसे अभागिनी के प्राणाधार!! पतिदेव!!! तुम मुझे छोड़ कहाँ गये। यदि तुम्हें मेरी कुछ भी चिंता न थी तो इस नन्हें बाल चंद्र के समान सुंदर अपने इकलौते पुत्र की ही चिंता तो की होती। हाँ! अब मैं आपके बिना इस संसार में कैसे जिऊँगी! किस तरह इस नन्हें बालक को पाल-पोसकर बड़ा कर सकूँगी? हा! मेरी समस्त ही आशायें मिट्टी में मिल गई। मैं किसी भी काम की न रही। आपके बाद जो कुछ थोड़ी बहुत मेरी मदद करता वह धन भी तो आपके ही साथ चला गया। मैं बड़ी ही मंदभागिनी हूँ। हे देव! अब कैसे मेरी जीवन यात्रा पूरी होगी।'

इस प्रकार नाना विलापों को कर तुम्हारी माता किसी प्रकार कुटुंबियों के समझाने बुझाने से शांत हुई और अगत्या गृह कर्मों को करती तुम्हें पाल-पोसकर बढ़ाने लगी और तुम भी बहुत ही दु:ख से दीनता पूर्वक दिन-दिन बढ़ने लगे। जब तुम कुछ बड़े हुये तो तुम्हारा तुम्हारी माता ने किसी वैश्य की कन्या के साथ विवाह कर दिया और तुम वणिज्या (वणिजी) के लिये दूसरे-दूसरे गाँवों में जा-जाकर कुछ द्रव्य उपार्जन करने लगे एवं एक दिन की वणिज्या से तीन दिन तक अपने कुटुंब का भरण पोषण करने लगे।

एक दिन की बात है कि तुम खूब सवेरे ही वणिजी के लिये दूसरे गाँव को जा रहे थे कि रास्ते में पीपल वृक्ष के नीचे ध्यान रूढ़ एक मुनि महाराज तुम्हें दिखलाई पड़े। वे मुनि सामान्य मुनि न थे। तीनों काल (प्रात:, मध्याह्न और सांय समय) योग

धारण करते थे, सर्व प्राणियों के हितैषी थे, अपनी चिदानंद आत्मा के ध्यानी, सांसारिक इच्छारहित, मान से शून्य थे, कर्मों के आस्रव और बंध के विध्वंस करने में लीन, मनोगुप्ति, वचोगुप्ति और कायगुप्ति के धारक, समितियों से दैदीप्यमान, शांतस्वरूपी थे। मुरजबंध आदि व्रतों के धारण करने से कृश शरीर वाले होकर भी पाँच इन्द्रिय और प्रबल मन की दुष्टता को रोकने में यथेष्ट शक्तिवाले थे, महीने दो-दो महीने के उपवास कर संपूर्ण इंद्रियों को रोक पर्यकासन मांड अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप के चिंतन में लवलीन हो जाने वाले थे और परोक्ष समस्त पदार्थों के ज्ञाता थे। उनका पवित्र नाम मुनींद्र विमल था। उन्हें देखकर तुम्हारे हृदय में स्वाभाविक भक्ति का स्रोत फूट उठा। तुमने हर्षित हो अपनी बनिजी की बकुचिया को तो उतारकर एक ओर रख दिया और मुनि के पैरों में पड़ नमस्कार कर यह सोचा-

"आहा! संसार में दो ही पुरुष धन्य हैं और वे ही वास्तव में किसी प्रकार सुखी भी हैं एक तो वे जो कि निष्कटंक एकछत्र पृथ्वी का राज्य करते हैं और दूसरी वे जो कि जितेन्द्रिय तपस्वी है। अथवा तपस्वी के साथ चक्रवती का साम्य मिलाना योग्य नहीं। तपस्वी की अपेक्षा चक्रवती को किंचिन्मात्र भी सुख नहीं है क्योंकि पहिला तो रागद्वेष से रहित आत्मसुखभोजी है और दूसरा रागद्वेष के सर्वदा अधीन विनाशीक इन्द्रिय सुख का अनुभव करने वाला है।"

इस प्रकार भक्ति भाव से नम्रीभूत हो तुम हर रोज प्रात: काल आने की मन में इच्छाकर अपनी कार्यसिद्धि के लिये चले गये और प्रतिदिन उसी प्रकार आने जाने लगे।

कुछ दिन बाद मुनि महाराज के योग समाप्त होने का दिन आया और उपवासों का अंत होने से पारणा का दिन हुआ तो उससे पहिले ही तुमने अपने मन में गुणों का ज्ञाता होने से यह विचारा कि -

"अहा! ये अद्वितीय तपस्वी यतिदेव आज पहले पैरों की धूली से किसके घर को पवित्र करेंगे। किस मनुष्य के भाग्य का सितारा इतना दैदीप्यमान होगा जिसको ये कल्याण का भाजन बनायेंगे। जिस मनुष्य के यहाँ ऐसे-ऐसे उत्तम पात्र अपना आतिथ्य स्वीकार करते हैं उसके किसी भी ऐहिक और पारलौकिक सुख की सामग्री की त्रुटि नहीं रहती। वह अवश्य ही उत्तम से उत्तम भोगों का पात्र बन जाता है। इन मुनि सरीखे

उत्कृष्ट पात्रों को थोड़े से थोड़ा भी यदि निर्दोष भक्ति द्वारा दान दिया जाये तो संसार में ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं है जो इच्छा करने मात्र से इस जन्म की तो क्या बात पर जन्म में भी प्राप्त न हो जाये। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने मात्र से अंधकार विलीन हो जाता है। उसी प्रकार ऐसे तपस्वी महात्माओं के दर्शन मात्र से पापों का समुदाय समूल नष्ट हो जाता है। फिर यदि दान आदि की सहायता से इनका संगम प्राप्त कर लिया जाये तो कहना ही क्या है? जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं और फिर विला जाती हैं उसी प्रकार मुझ मंद भाग्य की इच्छाएँ मन में उठती है और बिना पूर्ण हुये ही विला जाती है। जिस मनुष्य का पुण्य नष्ट हो गया है अथवा है ही नहीं, उसके घर को तपस्वी मुनिराज अपने चरण कमलों से पवित्र नहीं करते सो ठीक ही है बिना उत्कृष्ट पुण्य के कल्प वृक्ष ही कब किसके घर होते देखे व सुने गये हैं। जिस प्रकार चिंतामणि रत्न पापियों को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार इन सरीखे मुनियों को दान देने का समागम भी बिना उत्कृष्ट पुण्य के प्राप्त नहीं होता। यद्यपि ऊपर विचारी गई बातें सब ठीक हैं तथापि कौन कह सकता है कि उस पुण्य का उदय मेरे कब हो जाये और है या नहीं, इसलिये मुझे उनके आगमन की प्रतीक्षा में सावधान रहना चाहिये क्योंकि परिश्रम के करते रहने से ही मनुष्यों को विपुल फल की प्राप्ति होती है।'' इस प्रकार नाना तर्क वितर्कों को करता हुआ वह वैश्य धोये हुए निर्मल धोती दुपट्टे को पहिन कर अपने घर के दरवाजे पर खड़ा हो गया और उन महातपा मुनिराज के आगमन की प्रतिक्षा करने लगा।

मुनिराज पारणा के लिये नगर में पधारे और उनके ऊँचे नीचे उस नगर के महल मकानों को नंबर बार छोड़ते हुये उस वैश्य के पुण्य द्वारा प्रेरणा किये हुये के समान उसी की तरफ आने लगे। मुनिराज को अपनी तरफ आते देखकर शिवदेव ने अपना बड़ा ही भाग्य समझा, जिस प्रकार दरिद्र को निधि की प्राप्ति होने से अपार हर्ष होता है। उसी प्रकार असीम हर्ष हुआ और देहधारी पुण्य के पुंज के समान उन्हें अपने घर आते देखा। घर के पास मुनिराज के आते ही शिवदेव उठा उनका पड़िगाहन किया, और ऊँचे आसन पर विराजमान कर उनके चरणों का प्रक्षालन अपने हाथों किया। इसके बाद अष्ट प्रकार की पूजा कर नवधा भक्ति से आहार देने लगा। इसी बीच में सुरदेव, यशोदेव और नंददत्त वैश्यों की पद्मावती जयश्री सुलेका और मदनावली नाम की पुत्रियाँ सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित होकर साथ में हलुआ ले इसकी माता के घर आई

और सब एक जगह बैठ गई। शिवदेव ने उनके लाये हलुये में से उन मुनिराज को कुछ दिया और उनके इस व्यवहार से वे वैश्य पुत्रियाँ बहुत ही संतुष्ट हुईं, उन्होंने सोचा कि यह बुद्धिमान धन्य है, इसके यद्यपि धन नहीं है, वणिजी से अपना पेट भरता है तथापि धार्मिक कार्यों के करने का उत्साह उसका बहुत ही प्रशंसनीय है। जिन महात्मा के चरण क़मलों के दर्शन को बड़े-बड़े राजे महाराजे तरसते हैं परन्तु पा नहीं सकते उनके दर्शन की तो क्या बात? इसने उन्हें दान दिया है। अयि लक्ष्मी। क्या तू सचमुच ही अंधी है जो इस गुणशाली! सात्विक पुरुष को नहीं अपनाती? इसपर कृपा नहीं करती।

इसके बराबर अन्य किसी का भी अवश्य ही पुण्य नहीं है नहीं क्या भला! ये सर्व साधारण को दुर्लभ त्रिलोकीनाथ इसके घर स्वयं आते।!'' इस प्रकार मन में सोचविचार कर उन वणिक पुत्रियों ने उस पात्रदान की खूब ही अनुमोदना की और बार-बार उस शिवदेव को तथा मुनिराज को भक्ति भरे नेत्रों से देखा। तुझ (शिवदेव) ने भी भक्तिरस से पूर्ण मन को मुनि को आहार दान दिया परन्तु माता कदाचित् आकर कुछ विघ्न न कर दे इस भय से शंका बनी ही रही। आहार ले मुनिराज तो वन की तरफ विहार कर गये और वह वनिया थोड़ी दूर उनके पीछे जाकर अपने घर लौट आया।

भद्र! जो तुमने किया वह किसी से नहीं हो सकता, तुम निश्चय ही समस्त संपत्तियों के घर हो।' इस प्रकार बार-बार प्रशंसा करती हुये वे चारों वैश्य पुत्रियाँ अपने-अपने घर चली गईं। उसके बाद 'मैं प्रतिदिन मुनियों को भोजन कराकर स्वयं भोजन करूँगा।' इस अभिलाषा से वह प्रतिदिन प्रतीक्षा करने लगा और क्रम-क्रम से काल बीतने पर उनकी मृत्यु हो गई। इसी प्रकार शिवदेव के साथ दान की अनुमोदना करने वाली चारों वणिक पुत्रियाँ भी अपने-अपने भाग्यानुसार सुख भोगती हुई मरण को प्राप्त हुईं।

इस प्रकार श्रीमान् भगवद् गुणभद्राचार्य विरचित संस्कृत जिनदत्त चरित्र के छायाश्री हिन्दी अनुवाद में यह आठवां सर्ग समाप्त हुआ।।8।।

***

नौवाँ सर्ग

इसके बाद शिवदेव मरकर दान के प्रभाव से तू जीवदेव सेठ का पुत्र जिनदत्त हुआ। तुझे जो कुछ भी सुख प्राप्त हुये हैं वे सब उसी दान के महात्म्य से हुये हैं क्योंकि पात्रदान से सबही सुख प्राप्त होते हैं। तूने पहिले भाव में पद्मावती आदि वैश्यपुत्रियों के अनुराग में अपने मन को लगाया था इसलिये अन्य स्त्रियों में तेरा अनुराग नहीं हो पाया। दान देते समय जो हृदय में माता के आज जाने की शंका से संक्लिष्टता आ गई थी उससे जो भक्ति में न्यूनता हो जाने से पुण्य में न्यूनता हो गई थी उसी से ही बीच में अनर्थों की परंपरा तुम्हें प्राप्त हुई उसके अंत होने पर उत्कृष्ट संपत्ति के साथ-साथ अपने परिणाम के अनुसार पूर्व भव की चारों कन्याऐं तुम्हारी स्त्रियाँ हुई जो कि चंपा में सिंहलद्वीप में और स्थनपुर में अच्छे-अच्छे घरानों की बेटियाँ होकर विमलमती, श्रीमती, श्रृंगारमती और विलासमती के नाम से प्रसिद्ध हुई। उन्होंने तुम्हारे सिवा अन्य पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा न की इसलिये तुम्हारे ही साथ ब्याही गई और इस समय पूर्वभव में दिये गये दान के माहात्म्य से संसार के नाना सुखों का अनुभव कर रही हैं।

इस प्रकार जिनदत्त के पूर्वभवों का समस्त वृतांत जब मुनिराज कह चुके तो जिनदत्त तथा उसकी स्त्रियों को अपने पूर्व भव का समस्त वृंतात याद हो आया और उससे उन्हें मूर्छा आ गई। यह देख लोगों ने उसका कारण पूछा। उत्तर में जिनदत्त ने जो पहिले जन्म का वृतांत याद आया वह सब कह सुनाया इसके बाद वह मन में सोचने लगा।

"मुनिराज मेरे परम उपकारी हैं। मैं इन्द्रिय विषयों की लालसा में मत्त हो उन्हीं को तृत्प करने में लग रहा था। इन्होंने पहिले जन्म का समस्त वृतांत बतलाकर सचेत कर दिया। यद्यपि मैंने उस समय दारिद्र होने के तथा अज्ञानी होने के कारण कुछ विशेष धर्माचरण न किया तो भी मैं इस समय सब तरह से संपित्तयों की कृपा का पात्र

हूँ। अहा! देखो! मैंने बहुत ही थोड़ा सा दान पहिले भव में सत्पात्र के लिये दिया था वह ही जिस प्रकार छोटा वट का बीज बड़ा हो जाता है और अनेक शाखा प्रशाखाओं में फैलता है उसी प्रकार नाना संपत्तियों के द्वारा फल रहा है। यदि उस ही अत्अल्प दान की इतना महात्म्य है और संसार की उत्तम संपत्तियों का कारण हुआ है तो स्वर्ग मोक्ष की संपत्तियाँ अवश्य ही सुलभ रीति से प्राप्त हो जायेंगी इसमें संदेह नहीं है। लेकिन प्रमाद मद मात्सर्य मोह और अज्ञान आदि दुर्भावों के वशीभूत हुये मूढ अपने स्वरूप को नहीं विचारते। वे यह नहीं सोचते कि संसार में न तो उनका माता ही हित कर सकती है न पिता भाई बंधु और मित्र ही कर सकते हैं। जितना की निरीह साधु कर सकते हैं। जैनशास्त्र के अनुसार जो कुछ भी दान दिया जाता है उसी से निसंदेह कृतकृत्यता प्राप्त हो जाती है। इस समय मुझे प्राय: सब ही सामग्री प्राप्त है इसलिये बाहरी हित को छोड़कर मुझे भीतरी सच्चा हित करना चाहिये। मेरे पुण्य के प्रताप से ही महामोहरूपी तीव्र अग्नि को शांत करने के लिये मेघ के समान ये मुनिराज मुझे प्राप्त हुये हैं। जब तक आँधी के समान वेग से दिन पर दिन बीतने के कारण शीघ्र ही समीप आने वाली वृद्धावस्था मेरी इस शरीर रूपी झोंपड़ी गिराये नहीं देती है तब ही तक बल्कि उससे पहिले ही मुझे अपना हित कर डालना चाहिये और उसका यह समय युवावस्था होने से बहुत ही उपर्युक्त है। इन महामुनि के उपदेश से जो मैंने अपनी पूर्व जन्म की दशा जान ली है उससे चित्त भी स्थिर हो चुका है। इसलिये इन ही महामुनि के चरण तल में मुझे दीक्षा लेकर तप धारण करना चाहिये।' इस प्रकार हृदय में दृढ़ रीति से सोच समझकर जिनदत्त ने मुनिराज से निवेदन किया कि –

हे बिना ही किसी कारण के संसार का हित करने वाले नाथ! आपके प्रसाद से जो मैंने अपने पूर्व जन्म का वृतांत स्पष्ट जान लिया है उससे मेरा बड़ा ही हित हुआ है जो फल देने और मनुष्यों से पूजित कल्पवृक्षों से नहीं प्राप्त हो सकता, जो अभीष्ट पदार्थ देने वाली गाय नहीं प्रसव कर सकती और जो चिंता करने मात्र से प्रदान करने वाली चिंतामणि रत्न नहीं दे सकता वह ही हितदायी फल आपके चरण कमलों के सेवन करने से प्राप्त होता है। जब तक मनुष्य आपके चरणों का सहारा ले उनकी आज्ञानुसार नहीं प्रवृत्त होता तब तक वह नेत्रों से सूझता होकर भी वास्तव में अंधा है। संसार की समस्त बातों में पंडित होकर ज्ञानरहित है। संसार में न तो कोई पदार्थ ऐसा पैदा ही

हुआ है और न पैदा ही होगा। जो आपके ज्ञान में हाथ की हथेली पर रखे हुए आमले के समान स्पष्ट और प्रत्यक्ष न दीखता हो। नाथ! संसार रूपी गहन वन में मार्ग न सूझने से नाना दु:ख भोगते हुए इन प्राणियों को सीधा और सच्चा मार्ग दिखाने वाले आप ही हैं। आपके ही प्रसाद से लोग दुर्गति के कठिन दु:खों से रक्षा पाते हैं इसलिये हे त्रिलोकीनाथ! मुझे भी आप दीक्षा देकर संसार सागर के पार उतार दीजिये।'

जिनदत्त की उपर्युक्त विनती को सुनकर मुनिराज बोले कि 'हे भव्य! तूने जो कहा वह ठीक है पर कुछ वक्तव्य है उसे भी सुन! तुम सरीखे सुकुमार लोगों को कठिन-कठिन चर्या से सिद्ध होने वाला तप प्रशंसनीय ही है करने योग्य नहीं, क्योंकि जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे गये तप का आचरण करना बालू को कोरों से खाना है, अग्नि की ज्वाला को पीना है, हवा को गांठ में बांधना है, समुद्र का हाथों से तिरकर पार करना है, मेरु पर्वत को तोलना है, तलवार की नोक पर चलना है और आकाश के पार पहुँचना है अर्थात् जिस प्रकार बालू का खाना आदि कार्य कठिन है, उसी प्रकार जिनदीक्षा का धारण कर निर्वाह करना भी कठिन ही नहीं असंभव सरीखा है बल्कि यहाँ तक कहना चाहिये कि उपर्युक्त बालूखाना आदि तो किसी प्रकार किये भी जा सकते हैं परन्तु जिनदीक्षा का पालन करना नहीं हो सकता। क्योंकि उसमें सब तरह से शरीर को असह्य कष्ट भोगने पड़ते हैं। जैनतप धारण करने से भूख प्यास की बाधा सहनी होगी, जन्मभर सब समय सर्वथा वस्त्ररहित नग्न रहना पड़ेगा, मनरूपी मल्ल का उत्कट वेग रोकना होगा और मन से जिसका विचारना कठिन है वह महाव्रत का भार ढोना होगा। जिस प्रकार चारों सांकलों से बंधा हुआ मनुष्य अपने हाथ पैर किसी तरफ किसी तरह नहीं हिला डुला सकता उसी प्रकार समितियों के वशीभूत हुआ जैन मुनि भी स्वछंद मन वचन काय की प्रवृत्ति नहीं कर सकता। जिन एक-एक इन्द्रियों ने भी अपनी प्रबलता से संसार के लोगों को वशकर पराधीन बना दिया है उन मन सहित पांचों इन्द्रियों को अपने वश में करना होगा। भद्र! जैन दीक्षा से दीक्षित होकर अनियम से चलना नहीं होता। शास्त्रोक्त षडावश्यक अपने-अपने समय पर करने पड़ते हैं। प्रमाद को तिलांजलि दे देनी होती है। श्रद्धा से मन सर्वदा शुद्ध रखना होता है। फूलों की माला के समान सुकोमल केशों को हाथ की मुष्टियों द्वारा उखाड़ना पड़ता है। उस अवस्था में कपड़े की तो क्या बात? रोम, बल्कल और पत्तों तक का आवरण निषिद्ध है। जिसका कि सहना अत्यंत क्लेशकारी है। दीक्षा लेने के बाद जन्मभर स्नान करना नहीं होता जिससे कि

धूली आदि मलों से मलिन देह सर्वदा रखनी पड़ती है। दंतधावन भी नहीं करना होता और कंकड़ पत्थरमयी भूमि पर ही एक करवट से सोना पड़ता है।

शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पाणिपात्र से भोजन करना होता है और वह भी अंतराय टालकर एक दिन में कभी-कभी एक बार और कभी-कभी कुछ भी नहीं। इस प्रकार जिन बातों का उल्लेख किया गया है वे तो मूलगुण हैं इनके सिवा त्रिकाल योग, सेवा आदि उत्तर गुण बहुत से हैं जैसे कि भूख प्यास की बाधा आदि बाबीस परिषह सहनी पड़ती है, ध्यान का अभ्यास करना होता है और शास्त्र का पठन-पाठन आदि अनेक नियम साधने होते हैं जिनको तुम सरीखे सुखपूर्वक अपना बालकपन से अब तक का जीवन बिताने वाले कोमल शरीरी पाल नहीं सकते। तुम्हारे सरीखों को तृप्त करने वाला दान आदि शुभकर्म करते हुये गृहस्थ धर्म पालना ही यथेष्ट है वह ही तप तुम्हारे लिये पर्याप्त है और क्या बताया जायें? क्योंकि गृहस्थ धर्म के धारण करने से भी परंपरा स्वर्ग मोक्ष के सुख प्राप्त किये जा सकते हैं। इसलिये तुम तत्वों के भले प्रकार ज्ञाता होकर दान पूजा में रत होते हुये श्रावकों के व्रत निरतीचर पालते रहो और उसी से अपना यथाशक्ति हित करो।'

मुनिराज इस प्रकार कहकर जब चुप हो गये तो जिनदत्त ने नम्र होकर कुछ हँसते हुये निवेदन किया -

'हे निरीह हितकारक मुनिराज! आप समस्त तत्वों के ज्ञाता हैं, आप संसार के गुरु हैं आप ही कहिये कि क्या यह आपका उत्तर उचित है। आप सर्व के ज्ञाता हैं, इसलिये आपने जो मुझे समझाया है वह यद्यपि ठीक है। तप का धारण करना उतना ही कठिन है पर जिसको संसार सुखदायी समझता है। वह भवस्थिति ज्यों-ज्यों विचारी जाती है त्यों-त्यों मुझे कष्टदायी प्रतीत होती है। देखिये! जिनेन्द्र भगवान ने जो कुल गति बतलाई है वे नरक मनुष्य तिर्यंच और देव के भेद से चार प्रकार की है। नरक में जो जीव रहते हैं उनके कष्टों का क्या पूछना है? वहाँ तीखे तीखे शस्त्र अस्त्रों से उनके शरीर निर्दयता पूर्वक काटे जाते हैं। एक दूसरे से सदा झगड़ा ठाना करते हैं और अपना बैर निकालते हैं, वहाँ जिस तरह की दुर्गंध पवन बहती है जैसा शीत पड़ता है और जैसी उष्णता सताती है उससे सबका दिल दहल सकता है। उस जगह के लोग सदा भूखे ही रहते हैं, एक दूसरे के शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर निगल जाने की इच्छा

करते हैं उनके दाँत, ओठ, कंठ, छाती, बगलें, मुँह, तालु और काँखे आदि समस्त अवयव वैतरणी के सारमय दुर्गंध घिनावने जल से धोये जाते हैं जिससे कि वे गल गलकर गिरने लगते हैं। तलवार की धार के समान पैने वृक्ष के पत्ते उनके शरीर पर पड़ते हैं, कुत्ते, कौए, गीदड़, सियार, साँप आदि हिंसक जहरीले जुतुओं के आकार परिणत हुये नारकी परस्पर में एक दूसरे अपने-अपने बैरी को निगल जाने की चेष्टा करते हैं और शक्तिभर दु:ख पहुँचाना चाहते हैं। वहाँ कोई नारकी तो कोलू में डालकर पीसे जाते हैं, कोई कुंभीपाक रस में डुबोये जाते हैं, कोई लोहे के भालों से छेदे जाते हैं और कोई कुट शाल्मली वृक्ष पर चढ़ाये उतारे जाते हैं। इस प्रकार नाना तरह से वहाँ के जीवों को असह्य शारीरिक मानसिक और वाचनिक दु:ख उठाने पड़ते हैं परंतु जब तक उनकी आयु रहती है तब तक उन्हें बलात्कार सहने ही पड़ते हैं। जिस तरह पारा अलहदा बूंद-बूंद होकर भी फिर मिल जाता है उसी प्रकार नारकियों का शरीर शस्त्रास्त्र आदि नाना कारणों से भिन्न-भिन्न हो जाता हैं तो भी फिर मिलकर पूर्ववत् ही हो जाता है और जिस प्रकार तीव्र वेदना भोगने पर मनुष्यादिकों का शरीर छूट जाता है। उस प्रकार उनका पिंड नहीं छूटता अर्थात् जब तक आयु रहती है तब तक नहीं मरते। इसलिये वहाँ जीवों को जो दु:ख है उसका वर्णन नहीं हो सकता।

दूसरी तिर्यंचगति है, वहाँ एक तो परतंत्रता से जीवन बिताना पड़ता है दूसरे किसी पदार्थ की चाह होने पर उसके प्राप्त होनें की भरसक चेष्टा नहीं हो सकती। हेय उपादेय के ज्ञान को तो वहां बहुत ही कम प्रादुर्भाव है, इसलिये रातदिन जो तिर्यंच नाना दु:ख उठाते हैं वह कहा जा नहीं सकता।

तीसरी मनुष्य गति है पहिले तो उसका मिलना ही इस जीव को महा कठिन हैं यदि नाना कुयोनियों में बहुत समय तक भ्रमण कर इस जीव को किसी प्रकार उसकी प्राप्ति भी हो जाये तो फिर आर्य खंडों में जन्म ही प्राय: हो जाता है। जहाँ पर कि जिनेन्द्र भगवान के उपदिष्ट धर्म के सुनने का सौभाग्य होना स्वप्न में भी दुर्लभ है। यदि आर्यखंड में भी जन्म हो जाये तो सुजाति सुकुल में जन्म होना कठिन है और यदि वहाँ भी हो जाये तो संपूर्ण शरीर का निरोगपना व संपूर्ण होना कठिन है और यदि वह भी हो जाये तो लड़कपन तो खेलकूद बेवकूफी में ही निकल जाता है, युवावस्था कामरूपी पिशाच के फंदे में पड़कर समाप्त हो जाती है और बुढ़ापे में

समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो जाने से धर्म कर्म कुछ सध नहीं सकता। इसके सिवा अनिष्टसंयोग, इष्टवियोग, दारिद्र रोगीपना आदि अनेक आपत्तियों से पद-पद पर दु:ख ही उठाना पड़ता है। इस तरह मनुष्यों को सर्वदा दु:ख ही बना रहता है।

चौथी देवगति है। वहाँ यद्यपि शारीरिक दु:ख नहीं हैं तो भी ज़ो मानसिक दु:ख है वह अवर्णनीय है। स्वर्ग में देव अपने से अधिक सम्पदावाले अन्य देवों को देखकर जला करते हैं। जिस समय उनकी आयु छह महीने की शेष रह जाती है उस समय उसकी अवधि मालूम हो जाने से दु:ख उन्हें भोगना पड़ता है वह नरक की वेदना से किसी भी अंश में कम नहीं होता इसलिये देव भी दु:ख भोगने में नारकियों से किसी तरह कम नहीं होते।

इसलिये संसार में न तो कोई अवस्था है और न कोई समय है जहाँ पर कि प्राणियों को दु:खरहित सुख ही सुख हो। इस लोक में कोई न तो ऐसी जगह है जहाँ यह जीव अनंतोबार न पैदा हुआ हो, न कोई ऐसा दु:ख है जो हजारों बार न भोगा गया हो। इसलिये हे जगत्पूज्य! अब मेरे ऊपर कृपाकर प्रसन्न होईये क्योंकि विवेकरूपी माणिक्य दीपक के प्राप्त हो जाने पर प्रमाद करना ठीक नहीं है।

नाथ! आपने जो गृहस्थों के धर्म को ही मेरे लिये उपादेय और पालनीय बतलाया है एवं उसी में अभीष्ट सिद्धि हो जाने का धैर्य जो दिया है सो यदि सच है तो आपको जो तप है वह व्यर्थ ही समझा जायेगा इसलिये हे साधुश्रेष्ठ! इस क्षणभंगुर संसार में सारभूत जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट जैनतप की दीक्षा दे मुझे कृतार्थ कीजिए।''

मुनिराज ने सचमुच ही अंतरंग से विरक्त हुये जिनदत्त से जब ये वाक्य सुने तो कहा – 'हे भव्य! तुम्हारा कहना ठीक है। जैसी तुम्हारी इच्छा है उसी के अनुसार कार्य करो।'

मुनिराज की आज्ञा पाकर जिनदत्त ने अपने मित्र मतिकुंडल से यथायोग्य अपने पुत्रों को पद देने को कहा। तदनुसार समस्त पुत्र बुलाये गये और प्रणाम कर पिता जिनदत्त के पास बैठ गये। ज्येष्ठ पुत्र को लक्ष्य कर पिता ने कहा –

प्रिय पुत्र! तुम्हारी बुद्धि उदार है। तुमको यह मालूम ही है कि पुत्र के समर्थ हो

जाने पर पिता अपना समस्त कुटुम्ब के पालन पोषण का भार उस पर रख वन में जाकर तप तपता है। यह पूर्व से चला आया क्रम है इसलिये तुम सब तरह समर्थ हो गये हो, तुम्हें अपना सब भार सुपुर्द कर मैं तप तपना चाहता हूँ, आशा है तुम इसे स्वीकार करोगे और अपनी गृहस्थी का कामकाज सब तरह ठीक–ठीक चलाओगे। ये जो तुम्हारे छोटे भाई हैं उन्हें अपने ही समान मानकर आराम से रखना। समस्त जो नौकर चाकर और कुटुम्बी जन हैं उन्हें राजी रखना उन्हें अपने से विरक्त न होने देना। संसार के चाहे और काम रह जायें पर धार्मिक कर्मों में कभी भी आलस न करना उनको नियत समय से शास्त्रानुसार करते ही रहना।'

पिता की यह आज्ञा सुन पुत्र ने निवेदन किया कि हे पूज्य! आपने जो कुछ मुझे आज्ञा दी है वह उचित नहीं है क्योंकि जो संपत्ति तुमने भोगी है वह मुझे माता के समान अग्राह्य है। पिता पुत्र को अच्छी हितकर सीख देता है ऐसी किवंदती है पर आज वह आपने मोहरूपी अंधकार से वेष्टित मार्ग मुझे बतलाकर विपरीत कर डाली। आपके अन्य भी बहुत से पुत्र हैं कृपाकर उनमें से किसी को यह पद दीजिये और मैं आपके समीप रहकर अपना हित सिद्ध करूँगा।''

ज्येष्ठ पुत्र का यह निवेदन सुन अन्य बंधु बांधवों ने उसे बहुत समझाया और तब कहीं पिता का पद उसने लेना स्वीकार किया। इसके बाद उसका अभिषेक किया गया और देश कोष राज्य अलंकार आदि समस्त संपत्ति विधि अनुसार प्रदान कर दी गई। इसके सिवा अन्य अपने पुत्रों को भी यथायोग्य पद दिया और बांधु बांधव नौकर चाकरों को भी उनकी इच्छानुसार तृप्त किया। जिनदत्त ने अपनी स्त्रियों से भी उस समय कुछ कहना उचित न समझा और वैराग्ययुक्त चित्तवाले उसने रागद्वेष की भावना से रहित होकर कहा – कांताओं! जब से विवाह हुआ है तब से लेकर आज तक जो मैंने तुम्हारे साथ राग से, क्रोध से, मान से, मुग्धमन से और अन्य किसी कारण से कड़ा व्यवहार किया हो उसे क्षमा करो, मैंने तुम्हारे समस्त अपराध क्षमा कर दिये हैं।'

अपने पति जिनदत्त के उपर्युक्त वचन सुनकर उसकी स्त्रियों ने पैरों में पड़ हाथ जोड़कर कहा – ''हे नाथ! हम लोगों ने वह सब क्षमा कर दिया है। आप ही हमारा सब अपराध क्षमा कर देने की कृपा करें।' इस प्रकार अपने समस्त संबंधियों से दीक्षा लेने की अनुमति प्राप्त कर स्थिर चित्तवाले उस जिनदत्त ने अपने अनेक वैराग्य से पवित्र

हृदय वाले मित्रों के साथ-साथ साधुपदवी का आश्रय लिया। पति जिनदेव को दीक्षित देख उसकी स्त्रियाँ भी गेहवास से विरक्त हो गई, उनका चित्त विषय वासनाओं से शांत होकर इन्द्रियों के निग्रह करने में आसक्त हो गया और तदनुसार जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों में अनुरक्त हो आर्यिका हो गईं।

मुनि जिनदत्त निरतीचर तप तपने लगे। उन्होंने गुरु के समीप अंगपूर्णक प्रकीर्णक शास्त्र अच्छी तरह पढ़े और फिर पृथ्वी पर भ्रमणकर धर्मोपदेशरूपी मेघवर्षा से संसार के तप्त प्राणियों को तृप्त किया।

संसार रूपी समुद्र से पार कर देने में प्रधान कारण तीव्र तप को निरतीचार पालते हुये मुनि जिनदत्त बहुत से मुनियों के संग सम्मेदांचल पर पधारे और वहाँ अपना अंतिम समय समझ कर समस्त दोषों को नष्ट करने वाली संल्लेखना धारण की। उस समय उन्होंने सारभूत चार आराधनाओं का आराधन किया और कठिन तपों से कृश हुये शरीर को छोड़कर सम्यग्दर्शनरूपी रत्न से सुशोभित वह जिनदत्त का जीव बड़े भारी सुख के खजाने रूप आठवें स्वर्ग में देवांगनाओं के मन रूपी माणिक्य को चुरानेवाला देव हुआ।

जिनदत्त के साथ अन्य मुनि भी अपने परिणामों के अनुसार आयु के अंत होने पर समाधि मरण कर यथास्थान उत्पन्न हुये।

जिनदत्त की स्त्रियों जिन्होंने आर्यिका के व्रत धारण किये थे वे सारभूत नाना प्रकार के तप का आचरण कर उसी आठवें स्वर्ग में देवियाँ हुई जहाँ पर कि जिनदत्त का जीव पहिले से ही उत्पन्न हो चुका था। वे वहाँ अवधिज्ञान के बल से एक दूसरे को अपने पहिले भव का संबंधी जान बहुत ही आनंदित हुये और जिन धर्म का वह सब प्रभाव देखकर उसी के आचरण में चित्त लगाने लगे। वे वहाँ अन्य तपों के अभाव होने से केवल जिनपूजा आदि ही भक्ति भाव से पूर्ण हो प्रतिदिन करने लगे।

इस प्रकार श्रीमान् भगवद् गुणभद्राचार्यविरचित संस्कृत जिनदत्त चरित्र के भावानुवाद में यह नवमां सर्ग समाप्त हुआ।।9।।

।।समाप्तश्चायं ग्रंथ।।

***